ईश्वरीय सृष्टि का अद्भुत चमत्कार

एक पुरातन ऋषि का दिव्य जन्म

१४ सितम्बर सन् १९४२, में उत्तर-प्रदेश के गाजियाबाद जिले के, ग्राम खुर्रमपुर-सलेमाबाद में एक विशेष बालक का जन्म हुआ। बालक जन्म से ही एक विलक्षणता से युक्त था। और विलक्षणता यह कि जब भी यह बालक सीधा, श्वासन की मुद्रा में, कुछ अन्तराल लेट जाता या लिटा दिया जाता, तो उसकी गर्दन दायें-बायें हिलने लगती, कुछ मन्त्रोच्चारण होता और उसके उपरान्त विभिन्न ऋषि-मुनियों के चिन्तन और घटनाओं पर आधारित ४५ मिनट तक, एक दिव्य प्रवचन का प्रसारण होता। पर एक अपठित ग्रामीण बालक के मुख से ऐसे दिव्य प्रवचन सुनकर जन-मानस आश्चर्य करने लगा, बालक की ऐसी दिव्य अवस्था और प्रवचनों की गूढ़ता के विषय में कोई भी कुछ कहने की स्थिति में नहीं था। इस स्थिति का स्पष्टीकरण भी दिव्यात्मा के प्रवचनों से ही हुआ। कि यह आत्मा सृष्टि के आदिकाल से ही विभिन्न कालों में, शृङ्गी ऋषि की उपाधि से विभूषित और सतयुग के काल में आदि ब्रह्मा के शाप के कारण इस युग में जन्म लेने का कारण बनी। इस जन्म में अपठित रहने की स्थिति में जैसे ही यह शरीर श्वासन की मुद्रा में आता तो कुछ अन्तराल बाद इस दिव्यात्मा का पूर्व जन्मों का ज्ञान उद्बुद्ध हो जाता और अन्तरिक्ष में उपस्थित सूक्ष्म शरीरधारी दिव्यात्माओं के समक्ष एक सत्संग सदृश्य स्थिति बन जाती जिसमें इस महान आत्मा का सूक्ष्म शरीरधारी आत्माओं के लिए प्रवचन होता। जिसमें इस आत्मा के पूर्व जन्मों के शिष्य महर्षि लोमश मुनि पूज्य महानन्द के प्रवचन भी होते। क्योंकि इस दिव्यात्मा का स्थूल शरीर यहां मृत्यु लोक में स्थित होने के कारण वहां सत्संग में दिये जाने वाला दिव्य प्रवचन इस शरीर के माध्यम से यहाँ उपस्थित जन-मानस को भी सुनाई देते हैं। इन प्रवचनों में ईश्वरीय सृष्टि का अद्भुत रहस्य समाया हुआ है, जो किसी भी मनुष्य को, समाज और राष्ट्र को उच्च कोटि का जीवन जीने का कारण पैदा करने का सामर्थ्य रखते हैं। -शृङ्गी ऋषि वेद विज्ञान प्रतिष्ठान

१ ऊर्ध्वगति वाला पुरातन विज्ञान 1985 02 05

जीते रहो, देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भाँति, कुछ मनोहर वेद-मंत्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मंत्रो का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव की महिमा का गुणगान गाया जाता है क्योंकि वे परमपिता परमात्मा पुरोहित कहलाते हैं। क्योंकि वह परम और परा की आभा में निहित रहते हैं। जिसके ऊपर मानव परम्परागतों से ही पराविद्या के ऊपर अन्वेषण करता रहता है और विचार विनियम करता रहता है कि मैं परमविद्या और पराविद्या में रत हो जाऊँ। जो भी मानव इस संसार से उपरान्त होकर रहा, वही अपने को पराविद्या में ले जाना चाहता है और उस मानव की ये उत्कट इच्छा बनी रहती है कि मैं पराविद्या में रत होता हुआ उस परमपिता परमात्मा की प्रतिभा में निहित हो जाऊँ। यह प्रायः प्रत्येक मानव, जो परा विद्या में निहित रहने वाले हैं उनकी उत्कट इच्छा बनी रहती है। एक काल आता है जब वे उस पर प्रायः अन्वेषण अनुसंधन करते रहते हैं।

अन्नाद की पवित्रता

तो वे मेरे पुत्रों! वह उस आभा में निहित हो ही जाते हैं, उसको वे प्राप्त कर लेते हैं तो हमारे यहाँ उस पराविद्या के ऊपर नाना ऋषिवर, नाना प्रकार के अनुष्ठान और अन्नाद के ऊपर विचार विनियम करते रहे हैं कि हमारा यदि अन्नाद पवित्र होगा तो हमारे हृदय की जो तरंगे हैं वे तरंगें महानता को प्राप्त हो जायें और वे तरंगें महानता को प्राप्त हो जाती है जो हृदय स्थल में है, जिस हृदय में सर्वत्र यह जगत, समाया हुआ रहता है।

मानव हृदय की विशालता

जिस काल में ऋषि मुनियों ने इस महान हृदय के ऊपर अनुसंधान किया तो इस हृदय का समन्वय उस पराविद्या के स्वामित्व से प्राप्त हो जाता है। उसी में वह निहित हो जाता है। मैं तुम्हें बहुत परम्परागतों से ही अनन्य समय की वार्ताएँ प्रकट करता रहता हूँ और ऋषि मुनियों की चर्चाएँ उनकी जो एक महान पराविद्या है, उनका जो एक महान आन्तरिक अनुष्ठान एवं अन्वेषण हैं जिससे कहीं अपने को जगत में ले जाते और जो हृदय है, जिस हृदय में यह पंचमहाभूतों की तरंगें समाहित रहती है अब वहाँ से ही उद्बुद्ध हो जाती हैं। जब मानव उस हृदय स्थली को प्रायः जानने लगता है तो वह उस परमानन्दमयी जो प्रभु है उससे अपने हृदय का मिलान करता है। क्योंकि संसार का जितना भी रूप है उसकी स्थिति सब हृदय में मिश्रित रहती है। जितना भी प्रकाश है चाहे वह चन्द्र प्रकाश है, चाहे सूर्य प्रकाश है परन्तु उसकी स्थिति, उसकी प्रतिष्ठा मानव के हृदय में निहित रहती है। जितने भी अग्नि के भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वरूप हैं उनका भी केन्द्र मानव के हृदय में ही निहित रहता है। जितने भी नाना प्रकार की ध्वनियाँ है अथवा शब्द है चाहे वह पृथ्वी से द्यौ के मध्य में क्यों न हो, उन सब की स्थिति मानव के हृदय में होती है और यह हृदय कैसा अगम्य है, जन्म जन्ममान्तरों के संस्कार इस अन्तर्हृदय में निहित रहते हैं।

जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार

मुझे ऐसा एक काल स्मरण आ रहा है। एक समय पांचाल राष्ट्र में महर्षि सोमकेतु मुनि रहते थे। सोमकेतु ने कही वेद मंत्रों में यह अध्ययन किया कि यह जो नाना प्रकार के चित्र हैं, हमारे इस मानवीय हृदय में जो चित्रस्थली कहलाती है और उस चित्रस्थली में जन्मजन्मातरों के संस्कार निहित रहते हैं। सोमकेतु मुनि महाराज एक समय वह प्राण और मन की ध्वनि को जानते हुए, चित के मण्डल में प्रवेश हो गये और चित्र के मण्डल में

जो जन्मजन्मातरों के सूक्ष्म अंकुर विद्यमान है संस्कारों की प्रतिभा निहित है उसको वह जागरूक कर रहे थे और वह यह चाहते थे कि मैं इसको जानूं।

चित्त का मण्डल

मुनिवरो! देखो, ऋषि ने लगभग 12 वर्ष का अनुष्ठान किया और 12 वर्ष तक वायु का सेवन किया। उस वायु के सेवन में जल पोषक और अन्न पोषक जितने भी पदार्थ थे उनका वे प्राण के द्वारा सिंचन करते रहते और अन्तःकरण के संस्कारों को जानते रहते। तो ऐसा मुझे स्मरण है उनके चित्तमंडल में करोड़ो जन्मों के ससंकार दृष्टिपात आने लगे। वह जो संस्कार है चित्तमंडल में, जो अंकुर रूप से विद्यमान रहते है। वह चित्त का मण्डल कहाँ है? वह हृदय है और हृदय का समन्वय उस परमपिता परमात्मा की अनुपम जो एक धारा है जो अन्तता इस अन्तरिक्ष, चित्त की आभा में निहित रहती है उससे उसका समन्वय हो रहा है। जब मानव इस हृदय स्थली को जानने के लिए तत्पर होता है तो परमपिता परमात्मा का जो हृदय है, यह जो ब्रह्माण्ड है यह परमपिता परमात्मा की एक अनुपम हृदयस्थली कही गई है और मानव के हृदय का जब इससे समन्वय होता है तो उस हृदय का उससे समन्वय होकर के संस्कारों की उद्बुद्धता हो जाती है।

याग का सम्बन्ध

तो आज का हमारा वेद मंत्र कुछ यागों के सम्बन्ध में विवेचना कर रहा था अथवा चर्चा कर रहा था। यागों का सम्बन्ध भी मानव के हृदय से है क्योंकि हृदयस्थली बेटा! एक पवित्र याग की प्रतिभा में निहित रहने वाली है जिसके उपर मानव परम्परागतों से ही विचारता रहता है। ऋषि मुनि इस याग का आत्मा से समन्वय कर रहे थे। इसका समन्वय जब आत्मा से हो जाता है तो हृदय अगम्य बन जाता है और हृदय में उसको निहित कर लेता है।

याग का अभिप्राय

तो मेरे प्यारे! आओ, देखो, मैं तुम्हें विशेष चर्चाओं में ले जाना नहीं चाहता, विचार केवल यह कि आज का हमारा वेद-मंत्र यागों की चर्चाएँ कर रहा है। हमारे यहाँ बहुत प्रकार के यागों का वर्णन प्रायः वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है उन नाना प्रकार के यागों में एक याग का नाम वाजपेयी याग है। वाजपेयी याग और अग्निष्टोम यागों का वर्णन प्रायः वैदिक साहित्य में बहुत आता है। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने तो इसके ऊपर बहुत अनुसंधान किया है। यागों का अभिप्राय यह है कि प्रत्येक मानव हिंसा से रहित, हिंसा नहीं होनी चाहिए, उससे रहित याग करता है वह वायु और द्यौ में प्रवेश कर जाता है। ऐसा हमारे यहाँ वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है। हमारा जो यह अनुपम हृदय है यह भी द्यौ के सदृश कहलाता है।

तो मुनिवरो! नाना प्रकार की चर्चाओं में आ रहा था कि सोमकेतु ऋषि महाराज अपने में अनुष्ठान करते रहते और इस संसार को ज्ञान और विज्ञान से निहारते रहते थे क्योंकि यह ब्रह्माण्ड ज्ञान और विज्ञान से युक्त है, इसी में निहित रहने वाला प्राणी अनुसंधान करता हुआ, विज्ञान के युग में प्रवेश कर जाता है, विज्ञान के युग को ला देता है। जैसे महर्षि भारद्वाज मुनि के जीवन में आता है कि वह दोनों प्रकार के यागों में निहित रहते थे। एक आध्यात्मिक याग है और दूसरे को हमारे यहाँ भौतिक याग कहते हैं। भौतिक याग जो बाह्य जगत को प्रकाश में लाता है इन्द्रियों का विषय समाप्त हो करके भौतिक विज्ञान का समापन होता है वहाँ से आध्यात्मिक याग का प्रारम्भ होता है।

तो मेरे प्यारे! दोनों प्रकार के यागों में निहित रहने वाला आत्मीयता को प्राप्त कर लेता है। आत्मीयता क्या है? जो हमारे अंतर्हृदय में निहित रहने वाली एक चेतना है और उस चेतना को हम क्रियात्मिकता में लाते हैं उसी

तप का महत्व

चेतना से हम अंग प्रत्यंग को हम जानने के लिए तत्पर हो जाते हैं और आत्मा का, आत्मतत्व का जो धाम है उसे चेतना में रत करते हुए उस परमपिता परमात्मा के हृदय में प्रवेश हो करके जैसे माता के हृदय में शिशु विद्यमान रहता है और अपने अंग प्रत्यंगों को अपने में विहीन ''अस्वातनः गृही व्रणो वस्ताहस'' वह उसी में उसका वरण करता है। उसी में मेरे पुत्रो! अपने में, आभा में युक्त होता हुआ ममत्व को प्राप्त होता है।

इसी प्रकार परमपिता परमात्मा का जो जगत अथवा हृदय है इसे सर्वत्र हृदय से हृदय का समन्वय करते हुए अपने को महान बनाने के लिए तत्पर हो जाते हैं। आज मैं विशेष चर्चाएँ न देता हुआ, आज मेरे प्यारे महानन्द जी दो शब्दों की विवेचना कर सकेंगे। हम अपने वाक्यों को विश्राम दे रहे हैं हृदय की वार्ताओं में, हृदय में मानव को रत रहना चाहिए। अब प्यारे महानन्द जी दो शब्द उच्चारण करेंगे।

महर्षि महानन्द जीः- ''ओ३म् यशश्चमं ब्रह्माः वायुदेतां देवेभवाः वर्णानं ब्रह्माः''। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे ऋषिमण्डल! अभी-अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ज्ञान और विज्ञान के सूक्ष्मतम तन्तुओं का वर्णन कर रहे थे। इनकी वार्ताएँ सदैव गम्भीर और महानता में परिणत होती रहती हैं। पूज्यपाद गुरुदेव का जब अध्ययन काल, क्रियात्मक काल इनका आरम्भ था नाना ऋषियों की प्रतिभा और नाना ऋषिवर इन वाक्यों को क्रियात्मिकता में लाने के लिए सदैव तत्पर रहते। हम भी प्रायः उसी में निहित रहते। नाना प्रकार के औषध्ीय विज्ञान, यज्ञविज्ञान, चित्त विज्ञान यह सब अंतरिक्ष से, प्रायः बाह्य में लाना वैदिक मंत्रार्थ के द्वारा उस क्रिया में लाने का प्रयास करते रहते थे।

विज्ञान की भव्यता

भारद्वाज मुनि की चर्चाएँ मेरे पूज्यपाद प्रायः करते ही रहते हैं। इनका विज्ञान इतना नितांत, इतना भव्यता में परिणत रहा है। उन्होंने इसका अन्वेषण, अनुसंधान किया और इस संसार को प्रायः मापते चले आये हैं। विज्ञान की कोटि में भी संसार को मापते रहे हैं। महाभारत काल का जो विज्ञान है उस विज्ञान को मापना भी हमारा कर्त्तव्य रहा है। विज्ञान कितनी महानता में रहा है और वह विज्ञान अपने में पूर्ण रहा है। आधुनिक विज्ञान के ऊपर जब विचार विनिमय करते हैं। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को परिचय देने के लिए आया हूँ जहाँ हमारी यह आकाशवाणी जा रही है, वहाँ मैं एक याग का दिग्दर्शन कर रहा था। ''यागो ब्रह्मवर्चं चक्रवीरो अष्टवं यागाः'' मैंने बहुत पुरातनकाल में कहा, मेरा हृदय सदैव यजमान के साथ रहता है और हम सदैव यह कामना करते रहते हैं कि हे यजमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे, तेरे जीवन की प्रतिभा ऐसे कार्यों में रत रहती रहेगी तो तेरी मानवीय धारा एक पवित्र बनती रहे, मानो 'वेदाः अध्यानां भवि सम्भवाः' वेद का अध्ययन करने वाला उद्गीत गाने वाला उनकी याग के द्वारा ही रक्षा होती है।

यागों से महानता

बहुत पुरातनकाल हुआ मेरे पूज्यपाद गुरुदेव एक स्थली पर विद्यमान थे कजली वनों में। एक समय महाराजा अश्वपति का आगमन हुआ और महाराजा अश्वपति ने ये कहा कि महाराज! यह जो हम याग करते हैं इन यागों में क्या महानता है? तो पूज्यपाद ने कहा-''कि महानता है'' यदि यागों की महानता की तुम गणना करते हो, यागों के द्वारा जो महानता होती है उसकी कोई गणना नहीं होती, क्योंकि उसका अनन्य, अनन्तमयी आभा इस वायुमण्डल में प्रवेश कर जाती है।

जब यह उत्तर प्राप्त हो गया तो महाराजा अश्वपति मौन हो गये। महाराजा अश्वपति के यहाँ विज्ञान एक महानता वाला था। इसी प्रकार भारद्वाज ऋषि की चर्चा पूज्यपाद गुरुदेव ने की। वह विज्ञान और महाभारत काल का विज्ञान, जब मैं आधुनिक काल के विज्ञान से मापने लगता हूँ तो आधुनिक काल का विज्ञान एक ईकाई में

रमण करता रहता है, आधुनिक काल का विज्ञान एक ईकाई में रहता है। वह किस प्रकार, मैं एक प्रमाण देने वाला हूँ।

विज्ञान के दो प्रकार

मेरे गुरुदेव! ''आशुनं ब्रह्मवाचाः'' एक श्वेत नामक ऋषि हुए। एक समय श्वेत ऋषि महाराज भ्रमण करते हुए भाद्वाज मुनि के शिष्य सुकेता के द्वार पर पहुँचे। तो सुकेता ब्रह्मचारी से श्वेत ने यह प्रश्न किया था कि महाराजा तुम्हारी विज्ञान में कितनी गति है? तो सुकेता ने यह कहा-कि तुम इस विज्ञान के ऊपर ऐसा क्यों उच्चारण कर रहे हो? तो श्वेत ने कहा-कि महाराज! मैं कुछ जानना चाहता हूँ। तो ब्रह्मचारी सुकेता ने श्वेत से कहा-कि यह जो विज्ञान है यह दो प्रकार का है तुम कौन से विज्ञान को जानना चाहते हो? तो महाराज! यह दोनों प्रकार का विज्ञान कौन-सा? एक आध्यात्मिकवाद है और एक भौतिकवाद है। तो तुम आध्यात्मिकवाद को जानना चाहते हो या भौतिकवाद को। उस समय जब सुकेता ने यह कहा-तो श्वेत ने यह कहा कि महाराज! मैं तो दोनों प्रकार के विज्ञानों में से कुछ जानना चाहता हूँ।

ब्रह्मचारी राजा का प्रभाव

तो उन्होंने कहा देखो एक विज्ञान तो वह है जो प्राण के द्वारा मानव का उत्थान करता है। प्राण के द्वारा मानव अपनी प्राणत्व अगम्यता एकता को प्राप्त करता हुआ, एक सूत्र में लाता हुआ, सूत्रित होता हुआ, वह हृदय को प्राप्त करता हुआ, परमात्मा के हृदय को प्राप्त हो जाता है। एक तो यह विज्ञान है, जहाँ अन्धकार नहीं रहता, जहाँ मुत्यु का अभाव हो जाता है। मृत्यु नहीं रहती क्योंकि जहाँ अन्धकार नहीं, वहाँ मृत्यु क्या है? तो देखो, उन्होंने कहा-यह तो भगवन्! यथार्थ है। परन्तु जब राजा को ब्रह्मज्ञान होता है तो राजा ब्रह्मज्ञानी ही राज्य पर शासन करता है और जब राजा को ब्रह्मज्ञान होता है तो उसे मृत्यु का अभाव दृष्टिपात आने लगता है। तो राष्ट्र में जो प्रजा होती है उसको कर्त्तव्यवाद का भान होता है।

हे राजा! क्योंकि वह कर्त्तव्यवाद में निहित होकर के और प्रजा उसके कर्त्तव्य उसकी क्रिया उसका जो याग के अनुसार ही अपना क्रियाकलाप है और जब समाज उसके ऊपर क्रियाशील रहता है तो समाज में अंधकार नहीं होता। जब मृत्यु ''अंधकार ं ब्रह्मे'' जब मृत्यु का अभाव हो गया तो अंधकार नहीं रहता और जब अंधकार नहीं रहता तो स्वार्थवाद नहीं होता, जब स्वार्थवाद नहीं होता तो कर्त्तव्यवाद होता है और जब कर्त्तव्यवाद होता है तो वहाँ राष्ट्रीयता की प्रतिभा ऊँची बन जाती है।

इस प्रकार का राष्ट्रीयवाद, भगवान मनु ने समाज में इस प्रकार के राष्ट्र की स्थापना की इस प्रकार का समाज में, राष्ट्रीयवाद भगवान मनु ने इसी प्रकार के राष्ट्र की स्थापना की। एक मछली से लेकर सभी प्राणियों की रक्षा होनी चाहिए। यह प्राणी के लिए ''प्राणं ब्रह्े मोक्षं नमः ब्रह्े'' इनको भक्षण कहाँ से प्राप्त हो? तो यह परमपिता परमात्मा ने भिन्न-भिन्न प्रकार की जो सृष्टि का निर्माण किया है। उस सृष्टि के ऊपर प्रत्येक प्राणी उसी में निहित रहता है। यह राजा या प्रजा का विचार नहीं है। यह सदैव उनके भोगों का प्रसंग आता रहता है।

वैज्ञानिकों द्वारा त्रास

तो मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह उच्चारण कर रहा हूँ कि आधुनिक काल का जो विज्ञान है, वह विज्ञान प्राणी को त्रास देता चला जा रहा है, प्राणी को त्रास देकर के उसके अंतरात्मा को वह सूक्ष्म बनाता है, व्यापक नहीं बनाता। यदि वैज्ञानिक समाज को व्यापक बनाने लगे, समाज के हृदयों को व्यापक बनाने लगे तो यह राष्ट्र ऊँचा बन जाए।

तप का महत्व

आज जिस स्थली पर यह हमारी आकाशवाणी जा रही है। यहाँ ऋषि मुनियों के बड़े विचार होते रहते थे। ऋषि मुनियों की गोष्ठियाँ होती रहती थी। जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह विचार देता हूँ। कि यहाँ महाराजा भरत और उनकी माता इस तटस्थली पर --, बहुत समय हो गया है जब महर्षि कणव इस स्थली पर अपना वेद का अध्ययन करते थे।

महर्षि कणव

मुझे स्मरण है, पूज्यपाद गुरुदेव भी मुझे स्मरण कराते रहते थे, उनको कणव ऋषि क्यों कहते थे? उन्होंने लगभग 105 वर्षों तक कई अनुष्ठान किए, इस प्रकार के कि वे कनक को लाकर के, उसे जल में वृत्त करते हुए उसकी पुट लगाकर, अग्नि में तपाकर के उस अन्न को पान करते। वह उस कनक के रसों को पान करते रहते। तो कनक से उनका नामकरण कणव ऋषि के नाम से विख्यात हो गया, उनकी एक धारा बन गई। कणव ऋषि की माता जब लोरियों का पान कराती थी तो उनके पिता सोमभुक ऋषि महाराज उन्हें शिक्षा देते थे। कणव को तो वह ''अप्रतां भविते'' शिक्षा में रत करके त्याग, तपस्या और विवेक में परिणत कराते रहते थे। माता भी इसी प्रकार कराती रहती थी। तो सोमभुक ऋषि महाराज के पुत्र का बाल्य नाम स्वांचकेतु था और स्वांचकेतु से जब वह तपस्वी बने तो उनका नाम कणव ऋषि बना।

महर्षि कणव एक समय अनुष्ठान में रत थे। उन्होंने 105 वर्ष तक अग्नि में तपे हुए अन्न को पान करते थे देखो, वह संसार के प्राणियों के लिए होता है। ''अन्नादभूतं प्रभाः लोकाम्'' और जो साध्कजन होते हैं। जो प्राणायाम नाना प्रकार के प्राणों में रत रहते हैं, उनका अन्नाद, रसों से जो वह तपाया हुआ रस हो उसको शीतल बनाया हुआ हो, पात्र में उसका खरल करके उस रस को पान किया जाता हो तो वह दोनों ही रस एक दूसरे के पूरक बनकर मानव के हृदय को स्वच्छ बनाते चले जाते हैं। संसार में उन्हें ''यागां कणवं बृही वाचाम्'' उन्हें वासना की प्रवृत्ति, नहीं होती। वह यह जानते भी नहीं है कि ये संसार क्या है?

इसी प्रकार कणव ऋषि के जीवन में प्रायः यह होता रहा तो नाना ऋषि मुनियों की गोष्ठियाँ होती रहतीं। राजा आते, परन्तु वह उनसे शिक्षा लेकर जाते। एक समय कणव ऋषि ने अपने आसन पर अनुष्ठान समाप्त किया। उन्होंने जब अनुष्ठान समाप्त किया, तब उन्हें तीस वर्ष तक अनुष्ठान करने हुए हो गये थे तो उन्होंने सोचा कि मैं अपने अन्तःकरण के उन परमाणुओं को जानना चाहता हूँ जिन परमाणुओं से मेरे हृदय की तरंगें दूषित न रह जाए।

उग्रता में अज्ञान व नम्रता में ज्ञान

तो उन्होंने तीस वर्ष तक इस प्रकार का अनुष्ठान किया, क्रोधाग्नि न आ जाए। शीतलता में ज्ञान है और क्रुद्धता में अज्ञान है। जितना भी यह व्यवहार है जीवन का, चाहे उग्रता में हो, चाहे वह कामना में हो जितनी भी उग्रता है, उसमें अज्ञान निहित रहता है और जितनी भी शीतलता रहती हैं, नम्रता रहती है, जितना भी उसके हृदय में शीतल तरंगों का जन्म होता रहता है, उस मानव के हृदय में ज्ञान की प्रवृत्ति जागरुक हो जाती है, उसका क्रियात्मक ज्ञान उसके समीप आने लगता है, वह ज्ञान और विज्ञान में रत होता हुआ परमात्मा के ज्ञान को निहारने लगता है।

परन्तु अग्नि में तपा हुआ अन्नाद भी कहीं-कहीं शीतलता को प्राप्त कराता है। वह भी शीतलता में ले जाता है। उसमें जो मिश्रण प्रवृत्ति है, हमारे यहाँ उसको संगतिकरण कहते हैं। संगतिकरण में दूषितपन आ जाता है, उस संगतिकरण के दूषित होने पर मानव की विचारधारा, उसकी तरंगें वह भी दूषित वातावरण में प्रवेश कर जाती है,

ये वाक्य तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव देते ही रहते हैं, परन्तु आज तो मैं विचार दे रहा हूँ वे केवल विज्ञान की चर्चाएँ कर रहे थे।

ऋषि के आश्रम में ब्रह्मचारियों का आगमन

श्वेत ऋषि ने जब यह प्रश्न किया महाराज सुकेता से, कि यह जो विज्ञान है, यह विज्ञान अपने में कितना महान् हैं? तो उस समय ब्रह्मचारी सुकेता ने कहा कि महाराज! आज हम देखो, मारान् मनुवासन ग्रीहते एक आश्रम कहलाता है, वहाँ कण्व ऋषि रहते हैं। तो ब्रह्मचारी सुकेता और श्वेत ऋषि भ्रमण करते हुए, ''यशसो ब्रह्म वाचाः'' महर्षि कण्व के द्वार पर पहुँचे।

चन्द्रमा में रसों का भण्डार

कण्व ऋषि अपनी शान्त मुद्रा में विद्यमान थे और शान्त मुद्रा में वे चिन्तन कर रहे थे कि यह जो चन्द्रमा है यह क्या है? यह चन्द्रमा नाना प्रकार के रसों का एक भण्डार है और यह दूसरों से सहायता लेता है। सूर्य से इसमें प्रकाश आता है। यह उसी को शीतल बनाकर के रसों का प्रतिनिधित्व करने वाला है। तो ये अन्वेषण अथवा चिन्तन का एक विषय बना हुआ था। अन्तर्हृदय में इन वाक्यों को वे चिन्तन में ला रहे थे। चिन्तन में लाते हुए जब वह जागरुक हुए अपनी ध्यान अवस्था से जगत में आए तो देखो, दोनों ब्रह्मचारी विद्यमान हैं। जब दोनों ब्रह्मचारी विद्यमान हैं तो ब्रह्मचारी सुकेता ने कहा प्रकृति के उग्ररुप को जानना ही भौतिक विज्ञान कहलाता है। इस प्रकृति के उग्ररुप में क्या है? परमाणुवाद है। उस परमाणुवाद में क्या हैं? नाना तरंगें हैं, नाना ब्रह्माण्ड निहित रहते हैं। उन्होंने कहा महाराज! यह कैसे जाना जाए?

सूर्य की विभिन्न किरणें

तो महर्षि कण्व ने, एक यंत्र जो उनके समीप रहता था। उस यंत्र की ऊर्जा वह सूर्य से लेते थे और कभी किसी-किसी काल में वह चन्द्रमा से ऊर्जा लेते थे। तो उन्होंने यंत्रों से ऊर्जा ली और दोनों ब्रह्मचारियों को दिग्दर्शन कराया कि यह सूर्य की ऊर्जा है। इस सूर्य की ऊर्जा में यह मेरा यंत्र गति कर सकता है। तो सूर्य की जो नाना प्रकार की किरणें हैं उन किरणों में एक का नाम ऊषा है, द्वितीय का नाम कान्ति है। तो कान्ति और ऊषा दोनों का मिलान करके एक सूर्य की मृगी नामक एक तरंग, किरण कहलाती है उसके ऊपर यंत्रों में उन्होंने यंत्रित कर दिया और जब यंत्रित कर दिया तो सूर्य की किरण के साथ वह यंत्र गति करने लगा। जब गति करने लगा तो गति करता हुआ जिस भी लोक से, उस किरण का समन्वय होता था उसी लोक के चित्रों को लाकर के ऋषि के आश्रम में प्रवेश करने लगा।

ध्रुवमण्डल के चित्रों का दर्शन

जब ऋषि के आश्रम में प्रवेश करने लगा तो उन्होंने कहा- ब्रह्मचारी सुकेता यह दृष्टिपात करो। यह क्या है? वह आश्चर्ययुक्त हो गए। उन्होंने कहा-धन्य हो, प्रभु! हम इतना विज्ञान नहीं जानते। जब ये यंत्र ऊर्ध्वा में पहुँचा तो ध्ु्रुवमण्डल के चित्रों को लाकर के वह कण्व ऋषि के आश्रम में चित्र आने लगे। ''चित्राभवो सम्भवः'' तो उन्होंने वे चित्रे अंतरिक्ष में त्याग दिये और वह तीनों अपने में विचार-विनिमय करने लगे कि यह चित्रों में जो आ रहा है, किरणों की आभा में जो रत हो रहा है, उसको जानने के लिए आओ, हम कुछ विचार करें।

कण्व ऋषि ने कहा कि मैंने एक यंत्र ऐसा निर्माणित किया कि यह यंत्र मानो देखो, मानव के हृदय को, एक यंत्र से स्वाति गति देना, मेरा कर्त्तव्य बन गया। एक समय मैंने अनुष्ठान में यह दृष्टिपात किया कि एक मानव, मानव की रक्षा करता है और वह मानव पुकारता है कि मेरी मृत्यु होने वाली है, द्वितीय प्राणी उसकी रक्षार्थ के

लिए कहता है। आप निराश न बनें, मैं तुम्हारी सहायता के लिए आ रहा हूँ। तो उसी के शब्द से, उसी ध्वनि से वह मानव अपनी मानवीयता के रुप में, अपने को ही अनुभव करता है।

तो इसके ऊपर मैंने एक विचार-विनिमय प्रारम्भ किया। विचार करते हुए कि एक ध्वनि से ही मानव, मानव की कैसे रक्षा करता है? यह कितना अग्र शब्द है? जो शब्द का अग्र रुप निराशा के शब्द को बल दे रहा है, उसे शक्ति दे रहा है, उस शक्ति के ऊपर मैंने एक सूक्ष्म-सा यंत्र निर्माणित किया और वह यंत्र ऐसा निर्माणित हुआ, देखो, वह सर्प के रुप में दृष्टिपात आता रहता है। परन्तु जब मैं यंत्र को भुजों में लेता हूँ तो भुजों में आते ही वह यंत्र मुझे ऐसा प्रतीत होता है जैसे मेरी रक्षा कर रहा हो। इसी प्रकार ब्रह्मचारी सुकेता जो भारद्वाज मुनि के शिष्य थे वे उनके यहाँ एक-एक परमाणुवाद के ऊपर अन्वेषण करते रहते थे।

आधुनिक काल में विज्ञान का दुरुपयोग

तो विचार क्या? मैं आज मैं उसी क्षेत्र में आना चाहता हूँ। आधुनिक काल का जो यह विज्ञान मुझे दृष्टिपात हो रहा है यह प्राणी को त्रास देता है, रक्षा नहीं। विज्ञान का इस समय दुरुपयोग हो रहा है। इसीलिए मैंने बहुत पुरातन काल में पूज्यपाद गुरुदेव को यह वर्णन कराया कि यह विज्ञान का दुरुपयोग हो रहा है, ब्रह्मचर्य का ”ास हो रहा है और जिस समाज में, जिस काल में ब्रह्मचर्य का ह्रस, विज्ञान के द्वारा होता है, वह समाज और वह राष्ट्र अग्नि के काण्ड बनकर के रहते हैं। मैंने पुरातनकाल में भी यह कहा था कि जहाँ विज्ञान का दुरुपयोग होता है वहाँ अग्नि के काण्ड बनकर के रहते हैं।

भीम द्वारा निर्मित यत्र अन्तरिक्ष में विद्यमान

परन्तु मैं अब वहाँ आना चाहता हूँ। मैं महाभारत की चर्चा कर रहा था। महाभारत में एक स्थली पर विद्यमान होकर के, गंगा के तट पर विद्यमान होकर के अपनी आभा में, भीम के पुत्र घटोत्कच अपने में वैज्ञानिक थे, भीम अपने में वैज्ञानिक थे। जब भीम ने नाना प्रकार के यंत्रों को, वायु का एक-यंत्र बना दिया। यंत्रों को अंतरिक्ष में गमन करा रहे हैं और वह अंतरिक्ष में गमन कर रहा हैं।

देखो, आधुनिक काल में उसका रुपान्तर अपभ्रंश होकर के उन शब्दों को यह कहने लगा, आधुनिक काल का समाज कि भीम ने हाथियों को लेकर के अंतरिक्ष में उन्हें परिणत कर दिया। आधुनिक काल के विज्ञान में, आधुनिक काल की विचारधारा में यह परिवर्तन आया, अज्ञानता के कारण। क्योंकि महाभारत काल के पश्चात ही तो अज्ञान आया है।

अज्ञानता का प्रभाव

गौमेघ में गौ की आहुति देने लगे। इन्द्रियों की आहुति न दी। यह याग का कितना दुर्भाग्य हुआ? मैं इसके ऊपर जाना नहीं चाहता हूँ। पूज्यपाद गुरुदेव को मैंने कई काल में यह वर्णन कराया। नरमेघ में मानव की आहुति देने लगे। अश्वमेघ में अश्व नाम राजा का था, मेघ नाम प्रजा का जो अपनी प्रतिभा में निहित कहा जाता है।

महाभारत काल के बाद विकृति

आधुनिक जगत में इस महाभारत के पश्चात अज्ञान ने मानव के मस्तिष्कों को प्रकृति ने हनन किया तो उस काल में देखो, वह घोड़ो की आहुति देना प्रारम्भ कर दिया। उनके अंगों की आहुति देना प्रारम्भ कर दिया। जहाँ राजा अश्वमेघ याग इसलिए करता था कि राजा का राष्ट्र पवित्र बन जाये, याग के कारण पवित्र बन जाये, दानेषु बनकर के राष्ट्र को पवित्र बनाते हैं। जहाँ यह भावना वैदिक साहित्य में, हमें महाराजाओं के अश्वमेघ, याग क्या? वाजपेयी याग क्या? भिन्न-भिन्न यागों का यहाँ चयन होता रहता था। परन्तु जब हम आधुनिक काल के, इस

तप का महत्व

महाभारत काल के पश्चात अज्ञान को हमने दृष्टिपात किया तो उससे व्याकुल हो गए कि यह क्या हो रहा है? यह क्या खिलवाड़ है?

देखो, अहिंसा में हिंसा का प्रादुर्भाव हो रहा है, अजयमेघ में बकरी के अंगों की आहुति अग्नि में प्रवेश किया गया। परन्तु इस सम्बन्ध में जहाँ अजय नामक याग करना है कि मैं अपनी इन्द्रियों को अजय में लाना चाहता हूँ। साधक इसलिए याग करता था। राजा इसलिए याग करता था कि किसी राजा से मेरी पराजय न हो। कितना दुर्भाग्य रहा है वैदिक साहित्य का? मैं इस आभा में जाना नहीं चाहता हूँ विचार क्या? मैं विज्ञान की चर्चा कर रहा था।

महाभारत काल के विज्ञान के यंत्र अन्तरिक्ष में आज भी भ्रमण कर रहे हैं। जिसकी लाखों-लाखों वर्षों की, करोड़ों-करोड़ों वर्षों की आयु वाले यंत्र अब भी वायुमंडल में भ्रमण कर रहे हैं। कोई सूर्य की किरणों के साथ है कोई ब्रह्माण्ड की परिक्रमा कर रहा है आधुनिक काल के वैज्ञानिक अभी इकाई में भी नहीं पहुँचे है। अब मैं अपने गुरुदेव से आज्ञा पाना चाहता हूँ। हे यजमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखंड बना रहे, और तू अपने द्रव्य का सदुपयोग करता रहे। अब मैं अपने गुरुदेव से आज्ञा पाऊँगा।

मेरे प्यारे ऋषिवर! मेरे प्यारे महानन्द जी ने आधुनिक काल के राष्ट्र एवं विज्ञान पर अपने विचार व्यक्त किए। इनके हृदय में एक विडम्बना है जिसको यह प्रकट करते रहते है। हमारा विचार अब समाप्त होने जा रहा है। हम भी यजमान के लिए, हे यज्ञमान! तेरा सौभाग्य अखंड बना रहे। अपने द्रव्य का तुम इसी प्रकार सदुपयोग करते रहो। अब ये आज का वाक् हमारा यहाँ समाप्त होने जा रहा है।

अभिप्राय क्या कि हम उस परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए उस देव का गुणगान गाते हुए इस भवसागर से पार हो जावें। यह है आज का वाक्। आगे का वाक् अब समय मिलेगा तो शेष चर्चाएँ कल प्रगट करेंगें। अब वेदों का पठन-पाठन होगा। वेदां के पठन-पाठन के बाद यह वार्त्ता समाप्त होगी। दिनांक 5 फरवरी 85 स्थान - सुवाहेड़ी

२ द्रौपदी द्वारा पालित विदुषी श्रेयभामणी के पाँच पुत्र 1985 08 09

जीते रहो, देखो, मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भाँति, कुछ मनोहर वेद-मंत्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मंत्रो का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद-वाणी का प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वेद-वाणी में उस महान मेरे देव की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि जितना भी ये जडजगत अथवा चैतन्य जगत हमें दृष्टिपात आ रहा है, उस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के मूल में मानो मेरा वो देव दृष्टिपात आ रहा है।

वाक् की अनन्तता

हमने इससे पूर्व काल में तुम्हें प्रकट करते हुए कहा था कि जिस वाक् पर तुम चिन्तन करना प्रारम्भ करोगे, उसमें तुम्हें अनंतता का भान होने लगेगा, उसमें अनंतता दृष्टिपात आने लगती है। कोई भी विषय हो संसार का, चाहे वह रजोगुण में हो, चाहे वह तमोगुण में हो, चाहे वह सतो गुण की प्रतिभा में हो। एक-एक अणु और परमाणु के ऊपर भी यदि तुम विचार विनिमय प्रारम्भ करोगे तो बेटा! अनंतमयी जगत दृष्टिपात आने लगेगा। मानो एक नहीं उसमें अनन्य रूप अनंतमयी दृष्टिपात आने लगते है।

आज का हमारा वेद का मंत्र नाना प्रकार की चर्चाएँ कर रहा था और नाना प्रकार से हमें प्रेरित कर रहा था। परन्तु मेरे प्यारे महानंद जी की प्रेरणा एक भिन्न रहती है। उस प्रेरणा के आधार पर मानो कोई वाक् तो उच्चारण नहीं किया जा सकता क्योंकि वेद मंत्र कुछ कह रहा है। वेद मंत्र हमें उस आभा में ले जाने के लिए प्रेरित कर रहा है जहाँ मानव का जीवन पवित्रतम और महानता की ज्योति को पान करना चाहता है। प्रत्येक मानव के हृदय में नाना प्रकार की आकांक्षाएँ बनी रहती है। परन्तु कहीं वह साहित्यिक वाक्य में अपने को ले जाना चाहता है, कहीं वह दार्शनिक रूपों में अपने को रत करना चाहता है। कहीं बेटा! वेद की गंभीर मुद्रा में परिणत होना चाहता है। जहाँ उसके अंग-संग मानो वह प्रकाश को दृष्टिपात करना चाहता है। मेरे प्यारे! कहीं वह मानो अणु और परमाणु के मध्य में रहना चाहता है अथवा वास करना चाहता है। जिससे मैं परमाणुवाद के विज्ञान में रत हो जाऊँ। मेरे प्यारे! देखो, नाना ऋषि मुनि अपने में जब अन्वेषण करना प्रारम्भ कर देते है। तो ब्रह्माण्ड उन्हें दृष्टिपात होता रहता है।

वेद की प्रतिभा

मैंने बहुत पुरातनकाल में तुम्हें निर्णय देते हुए ये कहा है कि संसार अपने में अनंतमयी कहलाता है। यह मानव भी अपने में अनंतमयी दृष्टिपात आने लगता है। मेरे प्यारे! जब हम संसार के मानवीय साहित्य में प्रवेश होने लगते हैं तो वेद की प्रतिभा हमसे दूर हो जाती है। परन्तु साहित्यवादी, जिसका साहित्य है मानो देखो, जब उसके गर्भ में अथवा उसके क्रियाकलापों पर विचार विनिमय प्रांरभ करते है तो वहाँ यदि कोई उसमें प्रकाश आ जाए मानो प्रेरणा का स्रोत उससें प्राप्त हो जाए तो वह वेद की प्रतिभा कहलाती है। कोई साहित्य, इतिहास के रूप में परिणत होने वाला मानवीय समाज क्यों न हो परन्तु उसमें एक नवीन धारा का जन्म होता रहता है। उन नवीन धाराओं में मानो देखो, अग्रणीय बनकर के उसमें मानो एक विचित्रता आनी प्रारम्भ हो जाती है। कोई भी संसार का साहित्य ले लीजिए परन्तु लाखों वर्षों के पश्चात मानो देखो, उसमें परिवर्तन आ जाता है। वह परिवर्तनशील बन करके ही मानो उसकी महानता में विशेषता आ जाती है या उसकी महानता समाप्त हो जाती है।

मेरे प्यारे! देखो, जैसा वर्तमान में मानव के क्रियात्मक जीवन रहता है। मानो देखो, कुछ समय के पश्चात उसमें विकृतता, वह साहित्य मानो देखो, कुछ काल बाद उस रूप में दृष्टिपात नहीं आएगा। क्योंकि जिस समय

उसका भूतकाल आ जाता है, तो भूतकाल में मानो देखो, वह साहित्य उस रूप में हमें प्राप्त नहीं होता।

समय का प्रभाव

मेरे प्यारे महानंद जी मुझे नाना प्रकार की प्रेरणा देते रहे है। आज मैं मानो देखो, महर्षि लोमश मुनि का जीवन जैसे इससे पूर्व काल में प्रसारित किया जा रहा था। मानो देखो, जैसे कागभुशुण्डी का जीवन है। उनके जीवन चरित्र को यदि हम मानो देखो, आधुनिक जगत में बेटा! उस काल को साधारण काल के प्राणी, उस साहित्य की रचना को मानो देखो, अपनी प्रतिभा में लाएँगे तो उसमें अन्तर्द्वन्द्व आ जाएगा। क्योंकि वह उस प्रकार का नहीं रहता जो उस काल में था। एक माता का जीवन है, परन्तु वह उस काल ;रूपद्ध में नहीं रह पाता था जिस काल ;रूपद्ध में वह उस काल में था। मानो लाखों वर्षो के पश्चात या मानो कई हजार वर्षों के पश्चात उस प्रकार का वह जीवन नहीं रह पाता, जिस जीवन की हम वास्तव में कल्पना कर सकते है।

महाभारत का काल

तो विचार विनिमय क्या है? मानो देखो, मैं साहित्यिक रचनाओं में, जैसे महाभारत काल में जाना चाहता हूँ। महाभारत का काल मानो बड़ा विचित्र काल रहा है। उसमें विज्ञान की बड़ी प्रतिभा रही है। विज्ञान अपने में अनूठा बन के रहा है, क्योंकि भगवान कृष्ण और महारानी रूक्मणी दोनों ही विज्ञान के आँगन में क्रीड़ा करते रहते थे। परन्तु मुझे आधुनिक काल का, इस समय, वर्तमान का तो प्रतीत नहीं है। परन्तु मैं तो अतीत की चर्चा कर रहा हूँ।

मन्त्रों से नम्रता

अतीत में मानो देखो, जब वे दोनों एकान्त में विद्यमान होते थे तो उनकी विज्ञान की घड़ियाँ चलती रहती थी क्योंकि वे मंत्र जिसको स्मरण है, उसमें नम्रता आ जाती है। जो वेद का गान गाने वाला है उसके हृदय में नम्रता आ जाती है और जब मानो नम्रता आ जाती है तो प्रत्येक वेदमंत्र के ऊपर उसके विचार आने प्रारम्भ हो जाते है। जिस काल में वह एकान्त स्थली में विद्यमान होता है उसी काल में, जो वेद मंत्रो के वाघ्मय में मानो कोई विज्ञान हो, चाहे वह साहित्यिक आभा में रत रहने वाला हो वह अनूठा बन करके उनके समीप आना प्रारम्भ हो जाता है। जब वह प्रारम्भ हो जाता है तो मानो देखो, उसको नम्रता में, उसकी आभा में वह अपने को ले जाते है और विज्ञान के कुल में प्रवेश हो जाते है। क्योंकि विज्ञानता तो वहीं आती है जहाँ अन्वेषण होना प्रारम्भ हो जाता है। कोई भी भाषा, कोई भी रुपधारा होने वाला क्रियात्मक कर्म है उसमें एक आभामयी मानव का जीवन परिणत होने लगता है।

ब्रह्मवर्चोसि द्रौपदी

मुझे स्मरण आता रहता है, बहुत काल हो गया। मानो देखो, जिस काल में माता द्रौपदी अपने में विचार विनिमय में करती हुई मानो देखो, भयंकर वनों में भी उनका काल समाप्त हुआ है। ऋषि मुनियों के मध्य में भी विद्यमान हो करके वे अपने में प्रतिभाशाली बनी रही है। परन्तु देखो, जब इस प्रकार का विचित्र समय आना प्रारम्भ हो जाता है तो मानो देखो, मान प्रतिष्ठादि उस मानव के समीप आती है। ये आवश्यक नहीं है कि कोई प्राणी अपने में मानो देखो, अनूठा बना रहता है वह अपने में ही अपनेपन को दृष्टिपात करता है। परन्तु जब वह बाह्य जगत में प्रवेश करता है, आंतरिक जगत से जब बाह्य जगत मे जाता है तो मानो देखो, ये संसार की जो नाना प्रकार की तरंगे मानो तरघित हो रही है ये मानव को स्पर्श करती रहती है और स्पर्श करके मानो देखो, वह उसका बाह्य रूप बनकर के मुनिवरो! देखो, वह उस वाक्य को उच्चारण कर देता है जिससे वह दुखद रूपों को

अपने में धारण कर लेता है। मुनिवरो! देखो, यहाँ मैं ये स्वीकर करता हूँ कि द्रैपदी आजीवन मानो देखो, अपने में ब्रह्मवर्चोसि का पालन करती रही है। ब्रह्मवर्चोसि का पालन करने वाली देखो, परमात्मा का स्मरण करती रही है।

नम्रता में ईश्वर

मेरे प्यारे! मुझे वह कल स्मरण है जिस काल में उनका जीवन मानो इस संसार में व्यतीत हो रहा था। उस काल में मानो भयंकर वनों में ऋषिमुनि विद्यमान है। ऋषि मुनियों को भोज कराना, ऋषि मुनियों की सेवा करना, ये उनका नित्य क्रियाकलाप बन गया था। भयंकर वनों में मानो देखो, उनका जीवन एक विशाल बन गया। मानो वास्तव में तो बाल्यकाल से ही उनका जीवन इस प्रकार का रहा क्योंकि जहाँ वेदोद्घोष होता हो, जहाँ मानो देखो, नम्रता की प्रतिभा प्रतिभाषित होती हो, वहाँ प्रायः मानव का जीवन, चाहे मेरी पुत्री हो, चाहे बाल्य हो, चाहे मेरे प्यारे! देखो, पुरूष के रूप में हो, युवा के रूप में उनके हृदय की जो प्रतिभा है वह नम्रता में प्रवेश करती रहेगी। परन्तु देखो, वहाँ नम्रता ईश्वर का एक वरदान होता है ईश्वर की एक धारा होती है ईश्वर उनके गृहों में सदैव प्रवेश होते रहते है उनकी नम्रता मानो देखो, उनके हृदयों में आवृत्तियों में प्रवर्तित हो जाती है।

नम्रता एवं उदारता रूपी आभूषण

तो मेरे प्यारे! देखो, मैं विशेष वाक्य नहीं केवल यह उच्चारण कर रहा हूँ कि मानो देखो, उनके यहाँ अपने में ही अपनेपन को दृष्टिपात करना। मेरे प्यारे! देखो, वह पाँचो, जो उनके रक्षक, रक्षा करने वाले देवता के रूप में देखो, वह उनको स्वीकार करती रहती हैं। परन्तु स्वीकार करने के पश्चात वह अपने में ही परिणत अपनेपन को दृष्टिपात करना और योगारूढ़ रहना। मेरे प्यारे! देखो, नम्रता और उदारता में परिणत होना उनका एक आभूषण कहलाता है। मेरे प्यारे! ब्रह्मवर्चोसि का पालन करना ही उनका एक क्रियाकलाप बन गया था। मेरे प्यारे! मैं इस संदर्भ में विशेष चर्चा तुम्हें नहीं देना चाहता हूँ। क्योंकि ये चर्चाएँ, तो ऐसी चर्चाएँ हैं जिन वाक्यों की मैं पुनःपुनः मानो देखो पुनरुक्तियाँ करता रहता हूँ। विचार विनिमय में क्या है, मेरे पुत्रो! मुनिवरो! देखो, द्रौपदी ने अपने में ब्रह्मवर्चोसि का पालन किया गया।

श्रेयभामणी के पाँच पुत्र

तो मेरे प्यारे! देखो, उनके पाँच पुत्र, महारथियों के रूप में, मेरे प्यारे महानन्द जी कहते हैं कि वर्तमान के काल में महारथियों के रूप में उनके पाँचो पुत्रो का वर्णन आता हैं। परन्तु देखो, जिस समय वह बाल्य काल में अपने में मग्न रहती थी तो जिस समय वह मघलं व्रते मानो वह पाँचाल राष्ट्र में पाँचाली बनकर रहती थी, बाल्यकाल में। तो मानो उनके एक अंग-संग में रहने वाली, क्रीड़ा करने वाली उनके अंग संग में भ्रमण और विनोद करती रहती थी तो उसका नाम था श्रेयभामणी। मानो श्रेयभामणी उनके अंग-संग रहने वाली उनकी देवाः देवाश्रु सम्भवाती। मेरे प्यारे! देखो, मुझे ऐसा स्मरण है कि दोनो एक दूसरे में परिणत रहती थी।

परन्तु देखो, वह कुछ समय के पश्चात जब उनका विच्छेद हुआ, उनका संस्कार हो गया था। संस्कार जब हुआ तो वे संस्कार में मानो देखो, कुरू वंश में वाचित राजा के यहाँ देखो, उसका संस्कार हुआ। जब संस्कार हुआ तो, उसके किसी कारणवश देखो, पाँच पुत्र हो करके उनका विच्छेद कर दिया राजा ने। किसी कारण से विच्छेद हुआ। परन्तु जब विच्छेद हो गया तो वह वीरांगना बन गई।

श्रेयभामणी के पुत्रों की द्रौपदी द्वारा शिक्षा

परन्तु देखो, उनका वेदोद्घोष, वे व्यास मुनि के समीप देखो, अपने में वेदाध्ययन करना उन्होंने प्रारम्भ किया और वे पाँचों बाल्य पुत्र मानो देखो, उन्होंने पाँचाली को प्रदान कर दिए। उन्होंने महारथियों के रूप में मानो देखो,

उन्हें शिक्षा देना प्रारम्भ करती रहती थी। वह शिक्षा देती रहती थी। देखो, उन्होंने जब ब्रह्मेःअस्तो एक समय मानो देखो, भीम जी ने यह कहा कि हे देवी! तुम इन पाँचो पुत्रों को क्या बनाना चाहती हो? उन्होंने कहा-हे देवत्तव! मेरी इच्छा यह है कि हम क्षत्रिय है, क्षत्रिय ही ब्रह्मचारी होने चाहिए, ये क्षत्रिय के रूप में महारथी बनने चाहिए। उन्होंने कहा-इनकी माता तो वीरांगना बन गई है। परन्तु तुम इनको महारथी बनाना चाहती हो। उन्होंने कहा-माता वह नहीं, माता तो देखो, मेरा कर्त्तव्य बन गया है। मैं माता हूँ और माता के रूप में मानो देखो, इनका पूजन करना है। ये मेरा पूजन करेंगे, मैं इनका पूजन करूँगी। मेरे पूजन का अभिप्राय यही है कि मैं इनको मानो देखो, महारथियों के रूप में दृष्टिपात करना चाहती हूँ।

वैज्ञानिक भगवान कृष्णा

मेरे प्यारे! देखो, मुझे स्मरण है, जिस समय 'मघलं ब्रहे वाचसम्भिः जिस समय उनको वन प्राप्त हो गया था तो पाँचो पुत्र भगवान कृष्णा के आश्रम में, मानो देखो, उनकी विज्ञानशाला में चले गए थे। उनकी विज्ञानशाला में अनुसंधान करते रहते थे। क्योंकि हमारे यहाँ ये माना गया है कि द्वापर के काल में भगवान कृष्णा का जो जीवन रहा है। वह विज्ञान में विशेष रहा है।

परन्तु देखो, मेरे प्यारे महानन्द जी ने तो मुझे उनकी वर्तमान काल में प्रचलित निकृष्ट गाथाएँ वर्णन की है। उन्होंने तो यह वर्णन किया है कि उनकी बहुत-सी पत्नियाँ थी परन्तु देखो, 16 हजार पत्नियों का वर्णन भगवान कृष्णा के जीवन काल की गाथा, मेरे पुत्र महानन्द जी मुझे प्रकट कराते रहते है। परन्तु मैं इन वाक्यों को स्वीकर नहीं कर रहा हूँ। परन्तु जब वर्तमान काल की विवेनाएँ मुझे स्मरण आने लगती है तो वे मानो इस प्रकार के विज्ञान में रत रहते थे कि वह यंत्रों के द्वारा दिवस को रात्रि और रात्रि को दिवस के रूप में परिणत कर देते थे। इस प्रकार का अनूठा उनका विज्ञान था।

मानो देखो, एक समय जब विज्ञान की धाराओं में प्रवेश हुए तो देखो, पाँचाली को भी उन्होंने विज्ञान की कुछ धाराएँ प्रकट कराई थी। मुझे स्मरण आता रहता है एक समय देखो, वह अस्सुतं मघलं ब्रहेः उनके आश्रम में बेटा! एक सभा हुई थी। सभा मानो द्वारिका के आँगन में हुई। उससे देखो, नाना वैज्ञानिक विद्यमान थे। पाँचाली को उसमें निमन्त्रित किया गया और निमंत्रित करके पांचाली को ये कहा गया कि हे पांचाली! हम विज्ञान में रत रहना चाहते हैं, इन पाँचो राजकुमारों को तुम हमें प्रदान करो। तो मुनिवरो! देखो, उन्होंने कहा-बहुत प्रियतम है भगवन्, मैं इनको महारथी दृष्टिपात करना चाहती हूँ। मेरे प्यारे! भगवान ने कहा-कि मैं भी इनको महारथियों के रूप में दृष्टिपात करूँगा। परन्तु विज्ञान के वाघ्मय में, इनकी विज्ञानशाला भी विचित्र बनेगी।

पाँचों पुत्र

मेरे पुत्रो! देखो, मुझे स्मरण आता रहता है जब उन्होंने एक समय विज्ञान के लिए मुनिवरो! देखो, ये आकाशी सम्भवति मेरे पुत्रो! देखो, एक वाक् पर अनुसंधान होने वाला था। एक वाक् अनुसंधान में आने वाला था। विज्ञानवेत्ताओं का एक समूह एकत्रित हुआ, जिसमें मुनिवरो! देखो, महाराजा घटोत्कच और भीम इत्यादि देखो, भगवान कृष्णा और पाँचाली के देखो, पाँचों पुत्र जिनमें एक का नाम स्वाति था, एक का नाम मृची था, एक का नाम स्वातभानु, एक का नाम विक्रमवाती था। मानो देखो, पाँचवे का नाम श्वेम्भानु था। मानो देखो, ये पाँचो राजकुमार थे। जो उनकी आभा में रत रहते थे।

वेद मन्त्र के आशय पर चिन्तन

भगवान कृष्णा की महाविज्ञानशाला में ये वैज्ञानिक एक समय एकत्रित हुए। महारानी रूक्मणी, भगवान

तप का महत्व

कृष्णा, पाँचाली और देखो, घटोत्कच और भीम इत्यादियों का एक समूह एकत्रित हुआ। तो एकत्रित समूह में मानो देखो, एक शब्द आया था वेद-मंत्रो का। उस शब्द के ऊपर मानो पाँचाली याग किया करती थी और जब प्रातःकालीन याग में वह परिणत होती तो उस वेद मंत्र को उच्चारण करती रहती थी और वह वेद मंत्र यह था कि 'अंतरिक्षां भवि ब्रहाः प्रातरग्नं ब्रह्मे वाचोः सम्भवितां लोकां वायुः सम्भवाः लोकाः'। मानो देखो, यह न्योदा का वेद-मंत्र था। इसका उच्चारण करके मानो देखो, वह याग में आहुतियाँ प्रदान करती रहती थी। जब प्रदान करती तो मानो वही वाक् उन्होंने भगवान कृष्ण के समीप नियुक्त किया। उन्होंने कहा-प्रभु! वेद मंत्र कुछ कह रहा है। परन्तु देखो, उसका आशय भगवान कृष्ण ने और मानो देखो, जब वैज्ञानिकों के तत्वावधान में वह वेद मंत्र आया तो उसके तथ्य पर जाने का प्रयास किया गया।

तो मानो देखो, उसमें एक आपो का शब्द आता था 'आपो अग्निः सम्भवति उद्वक सम्वति वृणियाः' मानो देखो, ऐसा एक शब्द है। उस शब्द के गर्भ में जब पहुँचे तो प्रतीत हुआ कि इसमें एक परमाणु है। वह परमाणु मानो देखो, वायु के समीप आकर गमन करता रहता है और उस परमाणु का समन्वय मानो देखो, समुद्रों से, अंतरिक्ष से और अग्नि से उसका समन्वय रहता है।

भगवान कृष्ण की विज्ञानशाला में यन्त्र निर्माण

मानो देखो, इसी परमाणु के ऊपर वे जब अनुसंधान करने लगे अथवा विचार विनिमय में करने लगे तो मानो देखो, घटोत्कच, भीम, पाँचाली के पाँचो पुत्र, त्रेतां भवाः और भगवान कृष्ण ये एकान्त स्थली पर चले गए और विचारने लगे। विचारते-विचारते उन्होंने एक यंत्र का निर्माण किया मानो उसमें से स्वर्ण के परमाणुओं को ले करके उसका मानो पिपात बनाया। धातु पिपात बनाकर के और उसी पिपात को लेकर के, उन्होंने त्रेती वायु की कुछ पुट लगा कर और उसमें ब्रह्माग्नि की पुट लगाकर के मानो उन्होंने एक यंत्र का निर्माण किया जो सूर्य की किरणों के साथ गमन करता था और गमन करके वह निचले स्थलों पर ऐसा वृक्ष बन गया कि एक स्थली पर जाकर के वह स्थिर हो गया। जहाँ चन्द्रमा की, पृथ्वी की और बुद्ध की सीमा का मानो सीमांतर होता था।

यन्त्र का प्रभाव

परन्तु देखो, उस यंत्र का सम्बन्ध समुद्र से रहता था और समुद्र से यंत्र में धाराओं का जन्म होता जैसे सूर्य की किरणें आती तो वे सूर्य-किरणें मानो पृथ्वी के मध्य भाग से गमन करती तो उस समुद्र से, उनका समन्वय रहता। मानो देखो, समुद्र का समन्वय अग्नि से हो जाता। उन परमाणुओं का समन्वय जब अग्नि से हो जाता तो जो भी समुद्र की धारा के मध्य में, चाहे वायु में गमन करने वाला यान हो, चाहे समुद्र की तह में गमन करने वाला यान हो परन्तु वह यंत्र अपने में, उसकी धातु को ऊपर से आकर्षण, अपने में ग्रहण कर लेता था। तो मानो देखो, इस प्रकार का विज्ञान मुनिवरो! देखो, भगवान कृष्ण की विज्ञानशाला से प्रायः जन्म लेता रहता था।

द्वापरकालीन विज्ञान की धाराएँ

तो आज मैं बेटा! कहा चला गया हूँ। मैं विज्ञान में तो जाना नहीं चाहता था। परन्तु विचार तो केवल यह देने आया था कि पाँचाली के द्वार पर ही मानो देखो, पाँचो पुत्र 'रक्षां तं ब्रह्मेः' पाँचाली ने उनकी रक्षा की। भगवान कृष्ण के यहाँ बेटा! विज्ञान के वाघमय में वे प्रवेश कर गए थे और मुनिवरो! देखो, वही महारथियों के रूप में परिणत हुए। मेरे प्यारे! देखो, नित्यप्रति वे यंत्रों में विद्यमान हो करके वायु के वेग में गमन करते रहते थे। मानो देखो, पाँचों अपने में अभ्यस्त होते रहते थे। पाँचो ''रथं ब्रह्मेः व्रात प्रह्वा लोकाम्'' बेटा! उस काल में, महाभारत काल में बेटा! रथ एक यान बन करके रहता था। ऐसा रथी नहीं जो ''शुद्धमं ब्रह्मेः वातं गोऊ वच्छणां बृहीः व्रतां

देवाः'' गऊ के बछड़ो वाला वाहन नहीं, परन्तु वह वाहन केवल धातु पिपात का वाहन कहलाता था। जो वाहन मेरे प्यारे! देखो, किरणों के आधार पर मानो सूर्य की ऊर्जा से गमन करता रहता था। मेरे प्यारे! देखो, कुछ धातु पिपात इस प्रकार का था जिनको अग्नि तपा देती थी, उस अग्नि के ''जलं ब्रह्मेः'' जिस जल को अग्नि तपा देती है, ऊष्णा बना देती है, उसको सूक्ष्म बना देती है। जिससे वह वाहनां की क्रियाओं में गमन करता रहता है। तो मेरे पुत्रो! उनके उस काल में इस प्रकार की विज्ञान की धाराएँ हमारे समीप आती रही है।

रूढ़ि से धर्म और मानवता का हृस

मैंने अपने पुत्र महानन्द जी से कहा कि हे पुत्र! समाव्रतम् मानो देखो, कोई वाक् पूर्व में कुछ होता है, उसकी पुनरावृत्ति होते-होते वह वाक् कुछ और बन जाता है। साहित्य का परिवर्तन हो जाता है। वास्तविक साहित्य मानो देखो, रूढ़िवाद में समाप्त हो जाता है। जब तक किसी काल में रूढ़ि नहीं आती है। तब तक वह काल महान बना रहता है और जब उस काल में रूढ़ि आ जाती है तो वह रूढ़ि मानो धर्म और मानवता का हृस कर देती है।

ममतामयी माता

तो मेरे पुत्रो! देखो, वे पाँचाली के यहाँ पाँचो रक्षार्थ थे। जिस समय वे वन चली गयी, उन्हें वन प्राप्त हो गया। तो एक समय बेटा! पाँचाली एकान्त स्थली पर विद्यमान हो करके प्रभु का चिंतन कर रही थी। चिंतन करते-करते बेटा! कुछ विचार धाराओं में मग्न थी। तो मुनिवरो! देखो, रथी बनकर के, पाँचों पुत्रों का रथ गमन करते हुए मुनिवरो! देखो, पाँचाली जिस स्थली पर रहती थी उस स्थली पर पहुँच गए। परन्तु उस समय पांचाली ने कहा हे पुत्रो! तुम्हारा गमन क्यों हुआ इस प्रकार? उन्होंने कहा-मातेश्वरी! हम इसलिए आए है कि आपका जीवन आनंदवत् तो है? उन्होंने कहा-''प्रियतम्'' उन्होंने कहा-'ममत्वां भवे' हे माता! पुत्र होने के नाते आपको दृष्टिपात करने आए है। क्योंकि माता ममतामयी होती है। वह अपने पुत्रो को क्या बनाना चाहती है? ये मानो, उसके हृदय की वेदना को मापा नहीं जा सकता। तो हे मातेश्वरी! हम तेरे समीप आए है। मानो हमारी रक्षा के लिए तू सदैव कामना करती रहती है और हम तेरी सेवा नहीं कर सकते। परन्तु देखो, ''ब्रह्मे वाचप्रहा''।

तो मुनिवरो! देखो, पाँचाली ने कहा-हे पुत्रो! मानो मेरी सेवा ही क्या हो सकती है। मानो देखो, सेवा तो वह कराना चाहता है जो मानो देखो, सेवा की स्थिति में हो, मैं तो सदैव अपने में तटस्थ रही हूँ और मैं सदैव यह चाहती रहती हूँ कि प्रभु मेरे मानवीय जीवन का कल्याण होना चाहिए। मानो देखो, ये पाँचो जो मेरे रक्षक है मैं इनके समीप अंग-संग रहती हूँ। मेरे हृदय की वेदना है कि इनका जीवन सदैव महान से महान बने, पवित्र बनें। क्योंकि देखो, ये मेरे ही कारण मानो अपने कष्टों को भी अपने में ग्रहण कर लेते है।

भविष्य का आभास

तो इसीलिए हे पुत्रो! भवे सम्भवः मानो पाँचो पुत्रो ने कहा-हे मातेश्वरी! हम भी वन में रहना चाहते। उन्होंने कहा-नहीं, तुम अपने में विचित्र बनो। क्योंकि मुझे कुछ ऐसा भविष्य प्रतीत हो रहा है कि इस हस्तिनापुर में अग्नि प्रदीप्त होगी और उसी अग्नि के काण्ड में मानो तुम भी प्रवेश हो जाओगे। मुझे कुछ ऐसा प्रतीत होता है मानो हस्तिनापुर कुटुम्ब का भविष्य कुछ उज्ज्वल प्रतीत नहीं हो रहा है। मेरा भविष्य भी देखो, उस प्रकार उज्ज्वलता में प्रतीत नहीं हो रहा है। जो कारण बन रहे हैं वह कारण बड़े विचित्र है। हे पुत्रों! तुम जाओ, अपने में कुशल बनो।

मेरे प्यारे! देखो, माता पाँचाली ने अपने पुत्रो को भगवान कृष्ण की विज्ञानशाला में प्रवेश करा दिया था। तो मुनिवरो! देखो, वे वहाँ शिक्षार्थी बने रहे। तो मेरे प्यारे! देखो, ''सम्भवाः लोकां वाचन्नमं ब्रहे व्रता'' उस काल की चर्चाएँ है वह काल यह कहता है मुनिवरो! देखो, अपने में अपने तक ही मानव सीमित नहीं रहा है। वे याज्ञिकवाद

में सीमित होकर मानो एक दूसरे की रक्षा में लगा रहता है।

मेरे प्यारे! देखो, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि श्रेयभामणी ने व्यासमुनि के अंग-संग वेद का अध्ययन प्रारम्भ किया। एक समय बेटा! महर्षि ने कहा-हे देवी! तुम मानो देखो, अपने में अध्ययन क्यों करती हो? उन्होंने कहा-प्रभु! मैं अपने प्रभु का चिंतन करती हूँ .... तो राजा के हृदय में जब वेदना जागृत हुई .... मैं प्रभु का चिंतन करती रहती थी ....। उसकी श्रद्धा तो प्रभु दृष्टिपात करे मेरी अशुद्धियों को ग्रहण नहीं करेंगे। मेरे प्यारे! देखो, जब उस अयोग्यता की चर्चाएँ महर्षि वेदव्यास ने ग्रहण की तो वेदव्यास बोले-पुत्री! मैं तुम्हें वेद का अध्ययन कराऊँगा।

श्रेयभामणी द्वारा वेदाध्ययन

तो मुनिवरो! देखो, वेद का अध्ययन उन्होंने प्रारम्भ कर दिया। क्योंकि वे वीरांगना थी। मानो देखो, जिस समय भी वेदव्यास उन्हें दृष्टिपात करते उसी समय वह वेद के मंत्रो का मंथन करती रहती थी। विचारती रहती थी। तो मेरे प्यारे! देखो, वेदों का अध्ययन करते-करते वेदव्यास अपने में चकित होते रहते, कि मैं विश्राम करता हूँ परन्तु ये मेरी पुत्री विश्राम भी नहीं कर रही है।

योगेश्वर

मेरे पुत्रो! देखो, रात्रि समय निंद्रा में, सूक्ष्म निंद्रा आती। क्योंकि योगेश्वर वही होता है जो सूक्ष्म आहार करता है। सूक्ष्म निंद्रा का आहार करता है। सूक्ष्म मानो वह वाणी से उद्गार उत्पन्न करता है उसके सभी वाक् सूक्ष्मता में सदैव रत रहते। तो इस प्रकार मेरे पुत्रो! वह अध्ययनशील बनी रहीं। तो अध्ययन करते-करते मुनिवरो! देखो, एक समय कहीं से भ्रमण करते हुए पाँचाली के पांचो पुत्र अपने वाहनां में कुछ अभ्यास कर रहे थे। तो भयंकर वनो में देखो, गंगा के तट पर विद्यमान होकर के, वह विदुषी अपने में अध्ययन कर रही थी। देखो, वेदव्यास ने उनका नाम मुनिवरो! देखो, वेदनी नियुक्त कर दिया था कि ये कन्या तो वेदनी है। मानो वेदों का अध्ययन करने में इसको वेदना बनी रहती है ये वेदनी है।

पुत्रो का माता से मिलन

तो मुनिवरो! देखो, जब वे पाँचो पुत्र अभ्यास कर रहे थे तो भ्रमण करते हुए मानो उस जिज्ञासु और वेदो का पठन-पाठन करने वाली उस देवी के द्वार पर उनका आगमन हुआ। जब आगमन हुआ तो उन्होंने उन पांचों पुत्रो को दृष्टिपात किया। जिनको उन्होंने अपने हृदय से दूर कर दिया था, जो अब पाँचाली के पुत्र कहलाते थे। तो मानो देखो, उन दोनों का परिचय हुआ। राजकुमारों से कन्या का जब परिचय हुआ, तो उन्होंने कहा-हम पांचाली के पुत्र है। तो मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने ''सम्भो लोकां वाचप्रहे'' उन्होंने कहा-हे मातेश्वरी! आप वेदों का कुछ पठन-पाठन तो कीजिए। आपका स्वर मानो बड़ा प्रिय लग रहा है। क्योंकि हम भी बाल्य हैं। हम मंगल वृत्तियों में हैं।

मेरे प्यारे! देखो, जब उन्होंने मंगलम् में प्रवृत्तियों का श्रवण किया तो वेदों का पठन-पाठन करने लगी। उन्होंने एक मंत्र कहा ''ओ३म् सम्भवितां लोकां ब्रह्मे वाचस्प्रहेः ....। वरूणां ब्रह्मे कृतो सम्भवाः लोकं वस्ति सु प्रजाहं वाचन्नमामि ध्रवर्णास्तहे ....।'' मानो इस प्रकार वेदों का पठन-पाठन किया, तो पुत्र मग्न हो गए। उन्होंने कहा-मातेश्वरी! आपका परिचय क्या है? उन्होंने कहा-तुम, वेद की वाणी श्रवण करना चाहते हो या परिचय लेना चाहते हो? मेरे प्यारे! देखो, उनके तपों में जो विचार थे उनसे मानो वे अपने में मग्न हो गए। उन्होंने कहा-मातेश्वरी! अब हमें आज्ञा दीजिए। आज्ञा पाकर के मेरे पुत्रों! देखो, वह भ्रमण करते हुए अपने में मानो द्वारिका में प्रवेश कर गए और वह कन्या अध्ययन करती रही।

मीमांसावादी महात्मा जयमुनि

तो मेरे प्यारे! देखो, कुछ समय के पश्चात महात्मा जयमुनि उनके समीप आए और जयमुनि का स्वर उनसे प्रियतम नहीं रहा था। क्योंकि जयमुनि जब तपों में प्रवेश करके, जब वेद का अध्ययन करते थे तो मानो उनका स्वर बड़ा विचित्र था क्योंकि वे मीमांसावादी कहलाते थे। मीमांसा दर्शन का अध्ययन भी किया करते थे। वे मीमांसा करते रहते थे, कि मैं जीवन की मीमांसा करना चाहता हूँ। मैं लोक और बाह्य आंतरिक दोनों की मीमांसा करना चाहता हूँ, वे उस मीमांसा में लगे रहते थे।

परन्तु वह वेदों के स्वरों में लगी रहती थी। वह कहीं, देखो मधुगान गाने वाली देखो, वह मालापाठ में जटापाठ में लगी रहती थी। मेरे प्यारे! देखो, माला के मनके जैसे सूत्र में होते हैं। इसी प्रकार मंत्रो को सूत्र में लाने का प्रयास करती रहती थी। तो मेरे पुत्रो! मैं बहुत दूरी चला गया हूँ वाक् उच्चारण करता हुआ। यही वाक् मुझे उच्चारण करना है कि मानव अपने में परिवर्तनशील न बन करके अपने में रत रहें। अपनी धाराओं को विचार विनिमय में करता रहे और उसी में, वह अपने में रत रहकर बेटा! उसका उत्थान रहता है अन्यथा उसका उत्थान नहीं हो पाता।

तो मेरे पुत्रो! विचार विनिमय क्या है? मानो देखो, वेदनी ने अपने में वेदों का पठन-पाठन किया। पठन-पाठन करते हुए तपस्या के प्रवाह में आ करके उनके समीप जाकर के उन्हें ज्ञान करा देती। तो मेरे प्यारे! देखो, वेदव्यास जी अपने मन में ही नमस्कार भी करते थे कि यह देवी कैसी विचित्र है, कैसी त्याग तपस्या में परिणत है। मेरे प्यारे! देखो, उनके साहित्य पर जब विचार करते तो वेदव्यास अपने में आश्चर्यचकित हो जाते।

महारानी द्रौपदी का संस्कार अर्जुन से

तो मेरे प्यारे! देखो, आज का हमारा वाक् अब समाप्त होने जा रहा है। तुम्हें यह प्रतीत हो गया होगा मैंने तुम्हें अपने कुछ वाक् प्रकट किए हैं। परन्तु वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे कई समय पूर्व काल में भी मुझे इन वाक्यों की चर्चाएँ की थी और चर्चाएँ उन्होंने यह की है कि ''अमृते ब्रह्माः वस्तो'' कि द्रौपदी के पाँचो पुत्र महारथी थे। उनका जन्म कैसे हुआ, कहाँ हुआ? परन्तु उनका जन्म तो वनकाल में हुआ। मानो देखो, उसी आपत्तिकाल में हुआ। क्योंकि पांचाली का जीवन बड़ा विचित्र रहा है। उनका संस्कार तो महाराजा अर्जुन के साथ ही हुआ।

पाँचाली की तपस्या का प्रभाव

परन्तु देखो, उसके पश्चात ये पांचो पाण्डव रक्षक बन गए। पांचो देवियाँ मानो देखो, उनसे पृथक् रहती। पांचाली ने अपने में यह संकल्प कर लिया था कि मैं इन्हीं के अंग-संग रहना चाहती हूँ। क्योंकि जैसे महाराजा अर्जुन की पत्नी देखो, सुभद्रा भी थी भगवान कृष्ण उसे द्वारिका में मानो देखो, ले गए थे। उसके पश्चात मेरे प्यारे! देखो, महाराजा युधिष्ठिर जी की धर्मपत्नी, देवी हस्तिनापुर में रही। भीम की धर्मपत्नी साम्भूमिका देखो, अपने राष्ट्र में ही रहीं। नकुल, सहदेव देखो, उनकी पत्नियाँ देखो, जिन तत्त्वों से उनका निर्माण हुआ था वे उन्हीं तत्त्वों में गमन करती रहती थी। केवल पांचाली ऐसी थी जो देखो, उनके अंग-संग रहती थी। मेरे प्यारे! देखो, वह अपने में विचित्रता में, सदैव तपस्या में, अपने में ही रत रहती थी। मेरे प्यारे! देखो, महापुरुषों के आँगन में, ऋषि-मुनि आते तो वे उनकी सेवाओं में लगी रहती थी। जब वन गमन हुआ तो वन में यही तो हुआ कि मानो देखो, उनका भण्डार चलता रहता था, उनका अन्नाद का क्षेत्र चलता रहता। ऋषि-मुनि आते और ग्रहण करते। मेरे प्यारे! देखो, ये पाँचाली तपस्वी थी यह उसका पफल था।

तो यह है बेटा! आज का हमारा वाक् अब मुझे समय मिलेगा तो मैं तुम्हें शेष चर्चाएँ कल प्रकट करूंगा। आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पठन पाठन होगा।

रूढ़ियों से साहित्य का विनाश

आज का वाक्, उच्चारण करने का मेरा अभिप्राय यह है कि मुनिवरो! देखो, जो प्रारम्भ में साहित्य में होता है, मानो देखो, कुछ काल पश्चात उसका परिवर्तन हो जाता है और जब रूढ़ियाँ आ जाती हैं समाज में, विचारों में तो मानो देखो, रूढ़ियों से साहित्य का विनाश हो जाता है। साहित्य में अध्ूरापन, अशुद्धवाद आ जाता है।

तो इसीलिए आज का वाक्, जैसा आज हम उच्चारण कर रहे है। मानो इसके पश्चात जब हम इस वाक् की पुनरुक्ति करेंगे तो यह वाक् ऐसा नहीं रहेगा जैसा आज हमने वर्तमान में उच्चारण किया। इस वाक् में परिवर्तन हो जाएगा। परन्तु जैसा वाक् मानो आज है मानो कल उसकी प्रवृत्ति ऐसी नहीं रह पाएगी। इसी प्रकार देखो, तरंगवाद है जैसी तरंगे आज हैं हम में, ऐसी कल नहीं हो पाएगी। यह प्रभु का अनन्तमयी जगत है। अनन्तमयी ब्रह्माण्ड और पिण्ड की कल्पना एक है। मानो देखो, उसमें धाराओं का परिवर्तन होता रहता है। परमाणुवाद आते रहते है। जैसा अन्न हमने आज ग्रहण किया है कल उस प्रकार का अन्न नहीं प्राप्त होगा, उस भावना से नहीं होगा। जिस माता ने आज भोजन प्रियता में प्राप्त कराया है। वह मानो देखो, कल उस भावना से वह भोजन नहीं करा सकती। जब नहीं करा सकती तो तरंगे भी उसी प्रकार का जन्म नहीं ले सकती।

तो मेरे प्यारे! ये अनंतमयी जगत है। इसके ऊपर मुझे कोई विशेषता में नहीं जाना है। पूज्यपाद गुरुओ के द्वारा मुनिवरो! देखो, अध्ययन करते हुए विचार विनिमय में करते, अपने में बेटा! मग्न रहे है। यह वाक् बेटा! अब समाप्त, अब वेदों का पठन-पाठन। ओ३म् देवाः यं श नः रथं मानं आपोः रथं गायाः मां ऋर्षि वनधना वाचन्नमत्प्राची आभ्यामं देवं रथ।। ओ३म् यंचं रथंचां गत्प्राहाः वसुः मां गाताः ॥ ओ३म् ममत्वाः हिरण्यः गाया आत्माः रथं आभ्यां देवाः यमः गायन्त्वा ब्रह्माः।। ओ३म् सर्वे सुख रहः मां ऋषिवर्णं ब्रह्मः ॥ 9 अगस्त,1985

३ वैदिक दृष्टि 1985 09 13

जीते रहो, देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भाँति, कुछ मनोहर वेद-मंत्रों का गुणगान गाते चले जा रहे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद मंत्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वेदवाणी में वह मेरा देव जो यज्ञोमयी स्वरुप माना गया है, याग ही जिसका आयतन माना गया है। उस परब्रह्म परमात्मा की महिमा का गुणगान गाते चले जा रहे थे। प्रत्येक वेदमंत्र उस परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन करता है अथवा उसके यज्ञोमयी स्वरुप का वर्णन करता रहता है। क्योंकि प्रत्येक वेदमंत्र गाया जाता है, मानो वह गायन है।

वेद मंत्रों के गायन का प्रभाव

जब मानव हृदय से गान गाता है तो उस गान की भिन्न-भिन्न प्रकार की धाराएं बन जाती है। जब वह प्राण के द्वारा गान गाता है, तो वह प्राण सूत्र में पिरोया जाता है। इसी प्रकार यह जो वेदों का गान है जो प्रत्येक मानव उद्गाता बन करके उस उद्गीत को गाता ही रहता है। वह कैसा अमूल्य उद्गीत है जिसके गाने मात्र से मानव का हृदय प्रायः पवित्र बन जाता है और मानव अपने में यह अनुभव करता है कि मैं परमपिता परमात्मा का उद्गीत गा रहा हूँ। क्योंकि प्रत्येक वेद मंत्रों में उस परमपिता परमात्मा की महिमा है अथवा वह बखान, वह गान गा रहा है, मानव उसका उद्गीत गाता हुआ अपने में प्रसन्न हो रहा है।

यज्ञमयी संसार

आज का हमारा वेद मंत्र कहता है कि वह परमपिता परमात्मा यज्ञोमयी स्वरुप माना गया है, याग उसका आयतन है। क्योंकि परमपिता परमात्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में यह संसार भिन्न-भिन्न प्रकार के जो रुपों वाला हमें दृष्टिपात आ रहा है, यह सर्वत्र एक यज्ञोमयी स्वरुप मान गया है। संसार का एक-एक परमाणु, एक-एक अणु, एक-एक धाराएँ, एक-एक मानव की प्रतिभा, उस परमपिता परमात्मा के रचाये हुए यज्ञमयी संसार में पिरोई हुई सी हमें दृष्टिपात होती है। वह परमपिता परमात्मा कितना अनुपम और अनूठा है जिसकी महिमा का गान गाते हुए मानव की वाणी थकित नहीं होती और अन्त में उसका गान गाते-गाते वह थकित भी हो जाते है। वह इतना अनुपम है उसकी रचना इतनी महान है सृष्टि के पिता ने, सृष्टि के प्रारम्भ में इस संसार रुपी यज्ञशाला का निर्माण किया। यह कैसा प्रिय याग हो रहा है, माता अपने कर्त्तव्य का पालन करती हुई याग में परिणत हो रही है। मानव अपने कर्त्तव्यवाद को लेकर के याग में परिणत हो रहा है। प्रत्येक मानव जो अपनी-अपनी आभा में नियुक्त हो करके क्रियाकलाप कर रहा है, अपने मानवीय उद्देश्यों को जानने वाला है, वह एक याग में लगा हुआ है।

सृष्टि का प्रारम्भिक कर्म

'यज्ञोमयी ब्रह्मवाचा' बहुत समय हुआ सृष्टि के प्रारम्भ में मेरे प्यारे प्रभु के इस यज्ञमयी स्वरुप को जानने वाले नाना ऋषि मुनियों ने एक-एक वाक् पर बड़ा अनुसंधान किया है और अन्वेषण करने के पश्चात यह समाज एक क्रियाकलाप में परिणत हो गया और वह याग का क्रियाकलाप सृष्टि के प्रारम्भ से ही बुद्धिमानों के बुद्धि जीवी प्राणियों के हृदयों में स्थली बनाए हुए है। माता के हृदयों मे स्थली बनाए हुए है। प्रत्येक मानव आभा में अकाट्य जीवन की धाराएं जिसके द्वारा मानव नाना प्रकार के क्रियाकलाप करता हुआ अपने में उज्ज्वल बन जाता है। आधयमिक और भौतिक दोनों में रत हो करके, इस संसार को जानने का प्रयास किया है।

संसार का धारक परमेश्वर

तप का महत्व

आज मैं विशेष चर्चा प्रगट नहीं करूँगा, मेरी कोई हृदय से वृत्तियाँ नहीं है। क्योंकि आज का विचार, हमारा यज्ञोमयी स्वरुप का वर्णन हो रहा है, परमपिता परमात्मा इस संसार को धारण किये हुए है और धारण कैसे? जैसे यज्ञशाला में ओत-प्रोत हो करके यजमान उसे धारयामि, अपने में धारण करता है इसी प्रकार परमपिता परमात्मा इस ब्रह्मांड रूपी यज्ञशाला को अपने में धारणा किये हुए है और वह ब्रह्मा बन करके उसका पालन कर रहा है। ब्रह्मा बन करके ही उत्पत्ति का क्रिया कलाप भी हो रहा है। एक-एक शब्द की भिन्न-भिन्न धाराएं मानव के समीप आ गई हैं। अब मैं विशेष चर्चा न देता हुआ, मेरे प्यारे महानन्द जी दो शब्द उच्चारण करेंगे इस सम्बन्ध में।

पूज्य महानन्द जीः-ओ३म् यज्ञ कृत्यं मम वाचन्नमः यज्ञं वृथश्चम्। गत्प्रवाः वरुणाश्चौ सम्भव ब्रह्मः वश्चश्वं मनाः। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मंडल! अभी-अभी मेरे पूज्य पाद गुरुदेव कुछ याग के सम्बन्ध में अपनी विवेचना प्रगट कर रहे थे। प्रारम्भ से ही यागों का विशेष महत्व अपने में अनूठा बन करके रहा है। पूज्यपाद गुरुदेव ही वर्णन नहीं कर रहे है, परन्तु वेद का प्रत्येक शब्द और मानव का प्रत्येक क्रियाकलाप वह याग में परिणत हो रहा। बहुत पुरातन काल हुआ जब मैं अपने पूज्याद गुरुदेव से प्रश्न करता था, परन्तु यह उन वाक्यों का निर्णय देते रहते थे। क्योंकि निर्णय भी एक विशुद्ध रूपों में परिणत किया गया। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने इससे पूर्व के काल में भी यागों का चयन कराया और जिस स्थली पर हमारी यह प्रायः आकाशवाणी जा रही है वहाँ भी एक याग का आयोजन मैं दृष्टिपात कर रहा था। मेरा अन्तरात्मा प्रसन्न तो रहता ही है और प्रायः यजमान के साथ रहता है। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा करता हूँ कि मानव का हृदय से समन्वय होता है। परन्तु जब यजमान याग क्रियाओं में परिणत होता है तो उसकी अन्तरात्मा में घृणात्मक विचार न रह करके विशुद्ध विचार रहने चाहिए। जिससे देवताओं को विशुद्ध रूप से आहुति प्रदान की जाएं क्योंकि हमें हूत तो करना ही है।

मधयकालीन त्रुटियाँ

हमारे यहाँ मधयकाल में बहुतसी त्रुटियाँ आई है और वह त्रुटियाँ आज भी कहीं-कहीं विद्यमान हैं प्रायः वैसे तो सर्वत्रता में ही दोनों प्रकार की त्रुटियां प्रतीव होती है, परन्तु जब मैं आधुनिक काल के कर्मकाण्ड के विषय में परिणत होता हूँ, तो मैं पूज्यपाद गुरुदेव से भी यह वर्णन कराता रहता हूँ। कि हे प्रभु! यह कर्मकाण्ड क्या कहता है? मधयकालीन, महाभारत काल के पश्चात यज्ञशाला में देखो यज्ञ की दो वेदियों का प्रारम्भ हुआ। आज भी विद्यमान है परन्तु आधुनिक जगत में भिन्न-भिन्न प्रकार की रूढ़ियाँ बन गई है। यागों के सम्बन्ध में भी रूढियाँ बनने से अविवेक वृत्तियों में परिणत हो रहा है। जब मैं यह विचारता हूँ कि यह क्यों है? संसार में दो प्रकार की पद्धतियाँ वास्तव में भिन्न प्रकार की है। एक पद्धति अपने को सनातन कहती है, एक पद्धति अपने को आर्य कहती है। परन्तु यह विचारा नहीं जाता कि आर्य और सनातन क्या है?

अज्ञानता के कारण अंतर्द्वंद्व

मेरे विचार में तो आता रहता है। जब मैं पूज्यपाद गुरुदेव को वर्णन करता हूँ तो ये हर्ष धवनियाँ करने लगते हैं कि आर्य, सनातन कोई भी अंतर्द्वंद्व केवल अज्ञानता की प्रतिभा का है। जो अज्ञान है उस अज्ञान को ज्यों का त्यों मानव स्वीकार करने लगता है, तो उसमें रुढ़ियों की उपलब्धियाँ हो जाती हैं और जब ज्ञान को और त्रुटियों को विचार लिया जाता है तो उस समय अज्ञान की उपलब्धियाँ समाप्त हो करके, ज्ञान उभर करके आ जाता है। परन्तु मैं यह कहता हूँ आधुनिककाल का जो राष्ट्रवाद है अथवा मैं कर्मकाण्ड के सम्बन्ध में पूज्यपाद गुरुदेव को दो शब्द उच्चारण अवश्य करूँगा और वह दो शब्द यह हैं कि एक अपने को सनातन कहता है एक आर्य कहता है। परन्तु मैं यह कहता हूँ कि वही सनातन है, वही आर्य है क्योंकि दोनों का एक ही स्वरुप माना गया है।

परन्तु देखो, भिन्नता कहाँ आती है? विचारने से।

सनातन जगत में दो प्रकार की वेदियों का निर्माण होता है और याग की जब दो वेदी बन जाती हैं तो एक वेदी कहते हैं कि यह देवताओं के पूजन की है और द्वितीय वेदी को हवन कुण्ड कहते हैं, यज्ञशाला कहते हैं। परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ भोले प्राणियों से, कि यह जो याग हैं यह सर्वत्र ही देवयाग कहलाता है। यह तो देवताओं का पूजन स्वतः ही कहलाता है, तो मैं जानना यह चाहता रहता हूँ कि द्वितीय वेदी पर देव पूजा का अर्थ क्या बनेगा? क्योंकि वह केवल इसलिए क्योंकि जब महाभारत काल के पश्चात वाममर्गियों की धाराएँ बनी।

बलि का अभिप्राय

एक मानव देखो, रसना के ऊपर एक स्वादन चला और रसना का स्वादन यह चला कि याग प्रारम्भ हुआ उस याग में देखो, बलि देने की एक प्रथा बलवती हुई। परन्तु बलि के अर्थ को तो मानव ने जाना नहीं। यह मानव इतने अज्ञानता में चला गया कि बलि के अर्थ को नहीं जाना। बलि का अभिप्राय यह है कि अपने को उन कार्यों में समर्पित करना है, पुरुषार्थ और परिश्रम के द्वारा जो हमें क्रियाकलाप करने हैं वही हमारी बलि कही जाती है। परन्तु यहाँ बलि के रूप को देखो, भिन्न-भिन्न रूपों में मानव ने परिवर्तन कर दिया और वह परिवर्तन यह हुआ कि कहीं बकरे को आहुति बना करके देखो अजामेघ याग कर रहे है, कहीं अश्व को ले करके उसके मांस की आहुति दे करके वह अश्वमेघ याग कर रहे है।

रूढ़ियों का प्रभाव

भिन्न-भिन्न प्रकार के यागों का चयन मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह भी निर्णय कराना चाहता हूँ। मैंने कई काल में भी यह वाक् प्रगट किये हैं और कहा है अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कि वह जो वाममार्ग की प्रथा है वे भिन्न-भिन्न प्रकार की रूढ़ियों को पनपाने के लिए तत्पर रहे हैं और वह उसी के कारण नाना-नाना प्रकार की ;रूढ़ियाँद्ध बनी। परन्तु देखो, ब्राह्मण समाज ने, ब्राह्मण तो नहीं कहना चाहिए, इस स्वार्थी समाज ने इस मानव को विचलित कर दिया और इसको भिन्न-भिन्न रूपों में परिणत किया देखो, समाज अंधकार में चला गया।

उस अंधकार का परिणाम यह हो गया कि मांसों की आहुति दिलाना, उन्हीं का प्रसाद पान करना, उसी की अपने में रसोस्वादन का एक क्रियाकलाप बन गया। मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव से वर्णन करा रहा हूँ कि वह जो देव पूजा बन गई है, देवपूजा का अर्थ एक माना जाता है, द्वितीय वेदी बनाई गई और यह एक प्रकार से व्यर्थता में परिणत की गई। इसके दो प्रकार के स्वरुप बन गये, एक ही स्वरुप होना चाहिए। जो अपने को सनातन कहते हैं वे दो वेदी का निर्माण करते हैं। एक वेदी वाले अपने को आर्य कहते हैं।

आर्य

मैं यह कहता हूँ कि आर्य और सनातन, सनातन तो हम परम्परा, सनातन तो हम वेद को कहते हैं। जो सनातन से अनादि काल से चला आ रहा है। परन्तु देखो, जो ब्रह्मवेत्ता उसके अनुयायी होते हैं, उसको जो स्वीकार करने वाले ज्ञान और विज्ञान को अपने में धारण करने वाले वह आर्य कहलाते हैं, श्रेष्ठ पुरुषों की प्रतिभा में यह भाषिता मानी जाती है।

परम्पराओं के नष्ट होने का प्रभाव

विचार क्या? मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव को यह निर्णय देना चाहता हूँ कि इसी वाम मार्ग की देखो, उलट प्रथा से यहाँ नाना प्रकार के मतों का चलन हुआ, नाना प्रकार के सम्प्रदाओं का चलन हो गया। रूढ़ियों का चलन हो गया वह रूढ़ि कहीं जैन समाज में परिवर्तित हो गई, कहीं बौद्ध समाज में परिवर्तित हो गई। बौद्ध समाज ने

इस संसार को निठल्ला बना दिया। बौद्धकाल की नाना वार्ताएँ मैं, अपने पूज्यपाद गुरूदेव को प्रगट कराता रहता हूँ। जैनकाल की भी बहुत-सी वार्ताएँ इस प्रकार की हैं, जिन्होंने मानव को जड़वत् बना दिया और जड़वत् का परिणाम यह हुआ पश्चिमी राष्ट्रों ने और भी नाना राज्यों ने यहाँ आक्रमण किया और बौद्ध के कारण देखो, सब उनके आश्रित होकर अपनी परम्परा को उन्होंने नष्ट कर दिया। परम्पराओं का नष्ट हो जाना ही दूसरों के अधीन, दूसरों के हम आश्रित हो गये और आश्रित हो करके उस आश्रितपने का यह परिणाम हुआ कि यहाँ बौद्धकाल पनपा, बौद्ध सम्प्रदाय पनपा और पनप करके वह अपना मात्र रह गया संसार में। कहीं देखो, यहाँ राष्ट्रों में साम्यवाद की प्रथा हो गई और भिन्न-भिन्न प्रकार के रुपों में मानव समाज का परिवर्तन हो गया।

पूज्य गुरुदेव द्वारा पूर्वकालों में याग

तो इन सबका दोषी कौन है? वह जो यज्ञ पर दो प्रकार की वेदियों का निर्माण किया गया जिसकाल में, मैं बड़ा दुर्भाग्य आज स्वीकार कर रहा हूँ कि महाभारत काल के पश्चात देखो, याग में दो वेदियों का निर्माण हुआ। एक को हम सूर्य देखो, वह पूजा पठन-पाठन कहते हैं एक को हम अग्निहोत्र कहते हैं। अग्निहोत्र देवपूजा के स्वरुप पर अब तक मुझे कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ। कोई मुझे यह निर्णय करा दे कि जब हम देव पूजा करते हैं, सुगन्धि करते हैं, तो द्वितीय वेदी का, देव पूजा का मंतव्य क्या बन सकता हैं? तो मैं यह विचार तो नहीं जान सका हूँ अब तक, क्योंकि बहुत समय हुआ पूज्यपाद गुरूदेव के द्वारा मैं बहुत से विशाल यागों में भी जाता रहा हूँ और मुझे राजा महाराजाओं के उन यागों को दृष्टिपात करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। वृष्टि यागों में भी, पुत्रेष्टि यागों में भी, वाजपेयी और अग्निष्टोम यागों में भी, अश्वमेघ यागों में भी जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अश्वमेघ याग का अभिप्राय समाज ने, वाममार्ग ने यह स्वीकार कर लिया कि अश्व कहते हैं घोड़े को और उसके मांस की आहुति देना याग में वह अश्वमेघ याग माना गया।

विभिन्न यागों का वास्तविक स्वरूप

परन्तु यह वास्तव में नहीं है। प्रायः इसका स्वरूप यह कि अश्व नाम राजा का है, मेघ नाम प्रजा का है। प्रजा और राजा मिल करके अपनी त्रुटियों को समाप्त करके जो याग कर्म करते हैं उसका नाम अश्वमेघ याग माना गया है। परन्तु देखो, एक रूप में अजामेघ याग करने से बकरी के अंगों की आहुतियाँ दी जाती हैं। विचार क्या? देखो अजा नाम विजय को कहते है, अजा नाम विद्या को कहते हैं, अजा नाम के बहुत से पर्यायवाची शब्द हैं, उसमें देखो, हम संकल्प शक्ति से याग करें और हम ऐसे यागों को आत्मज्ञान के लिए जिससे हम किसी से विजय न हो सके, हम अजय बने। तो इस प्रकार के जो याग हैं उनका नाम अजामेघ कहा जाता है। परन्तु अग्निष्टोम याग में बैल की बलि का वर्णन हमारे यहाँ प्रायः देखो, मधयकाल में आया है। प्राचीन, अतीतकाल में भी इस प्रकार का वर्णन आया है कि राजा को वाजपेयी याग करना चहिए। और वाजपेयी यागों से, वृष्टि से उसका समन्वय होता है और वह याग जब होता है तो पृथ्वी अपने में नम्र हो जाती है और उस समय बैल की बलि का वर्णन है। क्योंकि कृषक अपने यहाँ कृषक बन करके इस पृथ्वी के बीच पृथ्वी की चमड़ी को उधेड़ करके सम्बोधित करता हुआ, इसके गर्भ में बीज की स्थापना करें, बैल के द्वारा, गौ के बछड़े के द्वारा, तो उसकी बलि का यहाँ वर्णन माना गया है। प्रायः यही इसकी प्रतिभा है।

अकर्मण्यता से अंधकार

जब मैं यह विचारता हूँ कि वास्तविक स्वरूप क्या है और मधयकाल में क्या बन गया है, तो मैं इस रूप को नहीं जान सका हूँ। परन्तु देखो, जानता हुआ भी मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से निर्णय करता रहता हूँ कि इस

प्रकार की देखो, पुरातनकाल में कोई प्रथा ऐसी नहीं थी। ये प्रथायें जो वाममार्ग का क्रियाकलाप रहा है, बौद्धकाल का यह क्रियाकलाप रहा हैं। बुद्ध की एक बड़ी सूक्ष्मता रही है। संसार तो उनको भगवान बुद्ध कहता है परन्तु मैं उसको वेदों का विरोधी बुद्ध कहता हूँ। मेरे यह शब्द कटु नहीं हैं, जिसने ऋषि मुनियों की परम्परा को नहीं विचारा, तो देखो, वह वेद का द्रोही कहलाता है। जो वेद के आशय को नहीं जान पाता। परन्तु उन्होंने मानव को शून्य बिन्दु में पहुँचा दिया और शून्य बिन्दु में सर्वत्र अकर्मण्य बन गये। अकर्मण्य बनने के कारण यह समाज अंधकार में चला गया। परिणाम यह हुआ कि दूसरे राष्ट्रों से आ आकर के उन्होंने इस पर आक्रमण किया, राष्ट्रों पर आक्रमण किया। आक्रमण कर, इसको अपने आश्रित करके मनमाने क्रियाकलापों की चर्चाएं होने लगी।

वेद को स्वीकार न करने का परिणाम

आज मैं पूज्यपाद गुरूदेव के समीप विशेष विवेचना तो नहीं दूँगा। केवल यह वाक् प्रगट कर रहा हूँ कि बुद्ध के पश्चात जैनकाल का भी यही क्रियाकलाप रहा है। जैन समाज ने भी वेद की प्रतिभा को न स्वीकार करते हुए विज्ञानमयी को स्वीकार न करते हुए, उन्होंने एक आत्मा को ब्रह्म का स्वरुप दे करके और इन्होंने भी शून्य बिन्दु का एक रुप दे करके मानव को अकर्मण्य बना दिया। बनाने का परिणाम यह हुआ कि यहाँ नाना, प्रकार की रुढ़ियाँ बन गई और रुढ़ियाँ कैसी बनी? रुढ़ियों का परिणाम, आज का समाज जानता है कि रुढ़ियों से क्या हो रहा है।

वैदिकता एक कर्त्तव्य

आज मैं कहता हूँ कि वैदिक एक धर्म नहीं हैं, वैदिक एक कर्त्तव्य है, वैदिक एक सार्वभौमिक विचार है। उसको देखो, हम धर्म नहीं कहते, धर्म तो केवल सर्वत्रता में, एक ही सूत्र में पिरोया हुआ है, क्योंकि रुढ़ियां भिन्न-भिन्न है, धर्म केवल देखो, एकांकी वचन माना गया हैं। वेद एक धर्म है। वेद एक मानवीयता है, मानवीय दर्शन है। परन्तु देखो, यह धर्म नहीं है, ये रूढ़ियाँ है और रूढ़ियों का परिणाम यह है कि राजा अपने राष्ट्र को नष्ट कर रहा है। राजा को चाहिए यदि मेरे वाक् को स्वीकार करने वाला राजा हो, तो यह जो नाना प्रकार का समाज चिन्तित हो रहा है, राष्ट्र चिन्तित हो रहा है, गोष्ठियाँ हो रही हैं, विचार हो रहे हैं, विज्ञान के बहाने गोष्ठियाँ हो रही हैं, इस भारत भूमि पर ही नहीं, इस पृथ्वी मंडल पर हो रही है। प्रत्येक मानव चिन्तित हो रहा है, द्रव्य से ऊबने वाला है, कोई द्रव्य में परिणत हो रहा है, कोई द्रव्य को एकत्रित करने में लग हुआ है, कोई द्रव्य से ऊब गया है। वह कहता है कि कोई शक्ति है जो हमें इससे बाधय कर रही है। इस प्रकार की विचारधारा में यह प्राणी मात्र दुखित हो रहा है।

पंच यज्ञमयी साधना

इसमें मूल कारण क्या है इसको जानना चाहिए। इसमें मूल कारण है कि वैदिक साहित्य को मानव ने अपने से दूर कर दिया है। वैदिक-साहित्य दूर होने से, वेद का क्रियाकलाप दूर होने से देखो, उसके पश्चात यह मानव दुःखित हो गया। ऋषि मुनियों ने बड़ी सहज पद्धति बनाई है मानव के जीवन के सम्बन्ध में। जो पूज्यपाद गुरुदेव ने हमें कल प्रगट कराई। इनकी उस पद्धति के ऊपर बड़ा सम्मान रहा है, चिन्तन करने का, विचार देने का, बड़ा एक विचार रहा है, क्रियाव्रती रही है। जब मैं उन विचारों में जाता हूँ मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने नाना पोथियों का भी निर्माण किया। इन विचारों में से विचारों को देते हुए कहते है, परन्तु वह विचार आज भी देते रहते हैं, कहते हैं कि पंच यज्ञोमयी मानव का क्रियाकलाप हो, उसी में उनके जीवन की प्रतिक्रिया है, उसी में द्रव्य है, उसी में दानेषु है, उसी में साधना है।

अशान्ति समाप्ति के हेतु

आज मानव उस पंच यज्ञोमयी साधना का सर्वत्र बाधक बना हुआ है। जब मैं यह विचारता हूँ कि नाना प्रकार की उसमें भी रूढ़ियाँ बन रही हैं। कोई मुहम्मद के मानने वाला है, तो कोई ईसा के मानने वाला है। ईसा के मानने वाला कुछ कह रहा है, मुहम्मद के मानने वाला कुछ कहा रहा है, नानक के मानने वाला कुछ कह रहा है। परन्तु भिन्न-भिन्न प्रकार की रूढ़ियों का परिणाम, कोई राष्ट्र की निन्दा कर रहा है, राष्ट्र को कोई दुरिता में, कोई उनके अनुकूल कह रहा है परन्तु हे भोले राजा! तू अपने जीवन को विचारने का प्रयास कर। तू अपनी राष्ट्रीय पद्धति और मानवीय पद्धति और समाज पर विचारने वाला बन। क्योंकि जब तक राजा अपने इस विचार को नहीं जानेंगे कि अशान्ति कैसे समाप्त हो सकती है, तो शान्ति की स्थापना कैसे होगी।

मेरे पूज्यपाद गुरूदेव कल वाक् प्रगट कर रह थे, कि प्रत्येक गृह में जब तक वेद की धवनि नहीं हो सकेगी, वेद और देखो, याग की अग्नि में, अग्नि होत्र करने की सुगन्धि नहीं हो सकेगी तब तक इस समाज में शान्ति की स्थापना नहीं हो सकती। राजाओं को मैं यह कहा करता हूँ, हे राजा! तेरे राष्ट में नाना सम्प्रदाओं का परिणाम यह है कि यह जो मुहम्मद के मानने वाले हैं, यह महा वाममार्ग कहलाता है। अपने पूर्वजों की आभा को लेकर के लाखों प्राणियों को अपने में भक्षण कर जाते हैं, केवल देखो, एक धर्म के नाम पर, रुढ़ि के नाम पर। मानव देखो, अपने पूर्वजों के नामों पर अपनी आभा को समाप्त कर देते हैं। यहाँ वैदिकता का ”ास हो रहा है। राजा को चाहिए कि मनु जी ने जो राष्ट्र का निर्माण किया था, उसी को अपनाये।

मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने मुझे निर्णय कराया था कि भगवान मनु ने जब राष्ट्र का निर्माण किया था, तो देखो, भगवान मनु के कमण्डल में मछली आ गई थी और मछली की उन्होंने 12 वर्ष तक सेवा की। वह गढेले में रही, कुछ समय में भी कमण्डल रही और जब वह बलवती हो गई, तो अपने समुद्र को चली गई। भगवान मनु का जीवन ऐसा था और यह मनु जी ने कहा है कि राजा के राष्ट्र में किसी भी प्रकार की हीनता नहीं होनी चाहिए।

भगवान मनु द्वारा राष्ट्र का निर्माण

जब यहाँ देखो, राजा जो राष्ट्रीयता अपने को कहते हैं, जब वह यहाँ अपने शरीरों को एक मुर्दाशाला बनाये हुए हैं, तो राष्ट्र कैसे ऊँचा बनेगा? मैं नहीं विचार रहा हूँ, मेरे विचार में यह वाक् नहीं आ रहा है कि देखो, यहाँ प्राणियों का भक्षण करने में मानव कितना अपने को सौभाग्यशाली स्वीकार करता है। मैं यह कहता हूँ अरे देखो, यहाँ समाज में मछली से लेकर के और प्राणीमात्र तक की रक्षा होनी चाहिए। क्योंकि देखो, मछली भी शोधन करती है, सर्प भी शोधन कर रहा है, यहाँ प्रत्येक प्राणी एक दुसरे का शोधन कर रहा है। वह वायुमडण्ल को पवित्र बना रहा है और मानव तू उन प्राणियों का भक्षण कर जाता है। तो तू दुर्गन्धवादी बन गया।

भगवान मनु का सिद्धांत

तो देखो, मैं राष्ट्र को कहता हूँ हे राजन्! यदि तू अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाना चाहता है, तो तुझे मनु सिद्धान्त को अपनाना होगा। मनु जी ने राष्ट्र का निर्माण इसलिए नहीं किया कि प्रजा के वैभव को संग्रह करके तुम अपने ऐश्वर्य में परिणत हो जाओ। भगवान मनु ने राष्ट्र का निर्माण इसलिए नहीं किया है कि नाना मेरी पुत्रियों के सतीत्व का हनन करके तुम अपने ऐश्वर्य में परिणत हो जाओ। भगवान मनु ने तो यह कहा है कि कर्त्तव्यवादी जो प्राणी है, उसको कर्त्तव्यवाद में लाने के लिए राष्ट्र का निर्माण होता है। राष्ट्र के निर्माण की प्रतिभासिता एक ही भास से है, कि 'ब्रह्मः वृत ब्रह्मा कुतोः' देखो राजा को चाहिए कि जो प्राणी दुःखित है, जो अकर्मण्य बन गया है, क्रियाओं से दूर चला गया है, कर्त्तव्य का पालन नहीं कर पा रहा है, उसको ज्ञान से, विवेक से, शासन से, उसे

क्रियात्मकता में लाना है, उसको कर्त्तव्यवाद की वेदी पर लाकर के स्थिर कर देना है, इसलिए राष्ट्र का निर्माण होता है।

राष्ट्र का कर्त्तव्य

तो मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से निर्णय करा रह हूँ। पूज्यपाद गुरूदेव ने तो मुझे कई काल में वर्णन करते हुए कहा है कि राष्ट्र का कर्त्तव्य है कि अपने जीवन को महान और पवित्र बनाये। देखो, यहाँ पूषण की सेवा और बुद्धिजीवी प्राणियों का उद्बोधन होना चाहिए। उनकी रक्षा होनी चाहिए और देखो, जो आततायी हैं उनको ज्ञान के द्वारा, दण्ड के द्वारा उनको दडित करना चाहिए। परन्तु देखो, राजा का राष्ट्र पुनः से पवित्र बन सकता है। समाज पवित्रतम में परिणत हो सकता है।

वाममार्गी

तो आज मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव को निर्णय करा रहा हूँ कि आधुनिक काल में देखो, यह जो मुहम्मद के मानने वाले हैं यह महा वाममार्गी कहलाते हैं। नाना प्राणियों का भक्षण देखो, धर्म के नामों पर यह रसास्वादन तक सीमित नहीं है, यह परमात्मा के नामों के ऊपर अपने को देखो, अपने जीवन को बनाते रहते हैं और यह कहते हैं कि यह तो हमारे पूर्वजों ने किया है। अरे, पूर्वजों ने इस प्रकार नहीं किया जिस प्रकार तुम कर रहे हो। यदि किया गया है, तो तुम्हारे पूर्वज भी दूषित प्रवृत्त के हो सकते हैं। मैं यह कहा करता हूँ कि इसीलिए मानव को अपने जीवन की धाराओं को ऊँचा बनाना है अपने मानवीयत्व विचारों से, प्राणीमात्र की रक्षा होनी चाहिए। वह तुम्हारा कर्त्तव्यवाद माना गया हैं। उस कर्त्तव्यवाद की वेदी पर आकर के मानव को अपने जीवन को ऊँचा बनाना है।

आधुनिक समाज के कार्य

अब मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव को यही निर्णय देने आया हूँ कि आधुनिक राष्ट्र क्या कर रहा है? यहाँ नाना प्रकार की हिंसा हो रही है, मेरी पुत्रियों के सतीत्व का हनन किया जा रहा है। यहाँ प्राणी, प्राणी का भक्षण कर रहा है, एक दूसरे प्राणी अपने पगों की प्रतिभा बनाए हुए हैं, तो यह है आज का समाज, आज का राष्ट्र।

प्रत्येक अंग में याग की प्रतिष्ठा

परन्तु मैं याग के सम्बन्ध में विचार दे रहा था कि यह जो याग है इसमें वाममार्गियों ने हिंसा करनी प्रारम्भ की, याग पनपता रहा, पनपते-पनपते समय-समय पर नाना पुरुष आते रहे, याग को उद्बुद्ध करने के लिए और याग के संस्कारों को-पुनः से अन्तःकरण में जागरुक करने के लिए, क्योंकि याग तो मानव के एक-एक, अंग-अंग में प्रतिष्ठित हो रहा है और वह याग के लिए पुकार रहा है। जितना सुकर्म है, अग्निहोत्र है, देव पूजा है, जो देवता हमारे अर्न्तहृदय में क्रियाकलाप कर रहे हैं, उनके लिए समर्पित याग करना, सुगन्धि देना, धवनि से धवनित करना, यह मानव का एक कर्त्तव्य है। विशाल कर्म है, जिससे वायुमण्डल पवित्र होता है।

वायुमण्डल की पवित्रता का आधार

आज का वैज्ञानिक अपने विचार में परिणत होता है, आश्चर्य करता है कि मैं इस समाज का, इस वायुमंडल का, कैसे शोधन कर सकता हूँ? परन्तु देखो, आज का जो वायुमंडल है यह दूषित हो गया हैं। याग के न होने से, विचारों की सुगन्धि न होने से, आहार और वाणी की अपवित्रता से देखो वायुमंडल अपवित्र बन गया है। वायुमंडल जब भी पवित्र बनता है तो देखो, मानव की वाणी से ही बनता है और जब अपवित्र बनता है तो मानव की वाणी के अशुद्ध होने से वायुमंडल अशुद्ध हो जाता है।

अहिंसा का प्रतीक

अहा! इसी प्रकार मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने मुझे कई काल में वर्णन कराया। आज वह वर्णन किया हुआ इनका मानो सार्थक सिद्ध हो रहा है और वैज्ञानिक अपनी स्थलियों पर जब विद्यमान होता है, तो यह अपने में सम्भूति अप्रतो परिणत होने लगता है। यह क्या हो रहा है? मैं इसके आश्चर्य में परिणत हो गया हूँ। इस प्रकार का विचार देखो, यागों के सम्बन्ध में, याग एक अहिंसा का प्रतीक है, याग का प्रारम्भ जो मानव की प्राथमिकता है, वह एक मोक्ष की पगडडीं का एक मार्ग है। इसके पश्चात जैसे ब्रह्म याग कर्मकाण्ड से करता है ऐसे आन्तरिक याग को वह आधयात्मिक याग के रुपों में परिणत करता चला जाए, तो मानव का उद्धार, मानव का कल्याण होगा और समाज एक ऊधर्व-मार्ग का अपना पथिक बन जाता है।

द्रव्य की उपयोगिता

तो मैं अपने वाक् को यहाँ विराम देने जा रहा हूँ। मेरा विचार यह कि हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। हे यज्ञमान! तेरा जो द्रव्य है उसका सदैव सदुपयोग होता रहे। देवताओं का हूत बन करके उनका भोज्य बनता रहे। जिससे देवता बाह्य जगत को और तेरे अन्तर्जगत दोनों को ऊँचा बनाते रहे। यह आज का हमारा वाक् समाप्त होने जा रहा हैं। अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊँगा

तो देखो, यह समाज कितना त्रुटियों में परिणत हो गया। आज भी कहीं-कहीं प्राणी इस प्रकार के वाममार्ग की प्रतिभा में रत हो रहे हैं। इस प्रकार मैंने एक ही वाक् कहा है कि दो वेदी बनाने का अर्थ केवल एक ही है कि ब्राह्मणों ने विचार कि एक वेदी तो अहिंसा की होनी चाहिए, एक वेदी हिंसा की होनी चाहिए। तो अग्निहोत्र में हिंसा और वह जो देवताओं का विशुद्ध पूजन है वह सुगन्धि से, तर्पण करने से, मार्जन करने से सिद्ध किया गया है। परन्तु मैं यह विचारता हूँ कि दोनों की कल्पना अशुद्ध हैं, दोनों की कल्पना विशुद्ध रूपों में न रह करके अशुद्धता में परिणत हो गई। देखो,एक ही देवताओं का पूजन है यज्ञशाला में, अग्नि में हूत करना, सुगन्ध देना और प्रत्येक आहुति वेद के मंत्र के ऊपर शब्दों पर विद्यमान हो करके वायुमंडल में प्रवेश करना, जिससे वायुमंडल पवित्र हो जाए। याग का वाक् अब मैं समाप्त करने जा रहा हूँ। आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा यह, कि मानव समाज में भिन्न- भिन्न प्रकार की रूढ़ि नहीं रहनी चाहिए। एक ही मानवीयत्व, वैदिकता का प्रचार-प्रसार, प्रकाश, ज्ञान और विज्ञान में रत रहना यह मानव का कर्त्तव्य हैं। आज का वाक् समाप्त अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊँगा।

रूढ़ियों का प्रभाव

पूज्यपाद गूरूदेवः-मेरे प्यारे ऋषिवर! मेरे प्यारे महानन्द जी ने अभी-अभी अपने शब्दों में बहुत कुछ उच्चारण किया। इन्हांने राष्ट्रवाद की वेदनाएँ और वैदिकता की प्रतिभा का वर्णन किया। इनके विचार में एक महानता रहती हैं। उन विचारों की प्रतिभा, रुढ़ियों का न रहना वास्तव में यह तो हम परम्परा से उच्चारण करते रहे हैं कि समाज में रुढ़ि नहीं रहनी चाहिए। क्योंकि रुढ़ियाँ समाज का विनाश कर देती है और राष्ट्र की पद्धति को भ्रष्ट कर देती हैं। इसीलिए नाना प्रकार की रुढ़ि न रह करके बुद्धिमानों का एक समाज एकत्रित हो और वेद की प्रतिभा को ले करके एक निर्णय लेना, मानवीय पद्धति का एक-सा ही विचार हो, एक-सी ही पद्धति होनी चाहिए। उस पद्धति में कुछ भिन्नता तो होती हैं, परन्तु स्रोत सबका एक रहता है। तो आज का विचार अब समाप्त होने जा रहा है। समय मिलेगा, तो शेष चर्चाएँ कल प्रगट करेंगे। आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पठन-पाठन।13.09.85 ग्राम -खिदिंडया

४ कन्या याग 15 09 1985

जीते रहो, देखो, मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भाँति, कुछ मनोहर वेद-मंत्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद मंत्रो का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेद-वाणी का प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन किया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा महिमावादी है। जितना भी ये जगत हमें दृष्टिपात आ रहा है मानो उस ब्रह्माण्ड की प्रतिभा प्रायः हमें दृष्टिपात आ रही है। उस ब्रह्माण्ड की आभा में निहित रहने वाला वह यज्ञोमयी स्वरूप कहलाता है। हमारे यहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की वार्ताएँ आती रहती है। नाना प्रकार के रूपों में मानव अपने को परिणत करता रहता है और उसकी विवेचनाओं में प्रायः अपनी धाराओं को ले जाता है।

क्रियाकलाप से जीवन की महानता

परन्तु जब हम वैदिक साहित्य के ऊपर अपना विचार विनिमय प्रारम्भ करते हैं। तो ऋषि मुनियों ने जब अनुसंधान किया और इस संसार के प्रत्येक क्षेत्र में जाने का उन्होंने प्रयास किया तो कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है, जिस पर ऋषि मुनि प्रायः अपनी उड़ान नहीं उड़ते रहे है। हमारे यहाँ ऋषि मुनियों की जो उड़ानें है, वह बड़ी विचित्र, महानता में परिणत रही है। जिसके ऊपर हम प्रत्येक शब्द की प्रतिभा में रत हो जाते हैं और उस क्रियाकलाप को लेकर के हमारा जीवन महान बनता है।

महर्षि याज्ञवल्क्य का विद्यालय

परन्तु बेटा! आज मैं तुम्हें महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के उस विद्यालय में ले जाना चाहता हूँ, जिस विद्यालय में नाना प्रकार की लेखनियाँबद्ध होती रहती थी। ऋषि, मुनि ज्ञान और विज्ञान की उड़ाने उड़ते रहते थे और परमपिता परमात्मा के रचाये इस भव्य जगत के ऊपर प्रायः वे अनुसंधान करते रहे।

शतपथ ब्राह्मण का निर्माण

तो आओ, मेरे पुत्रों! जब महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज मानो बेटा! तपस्या से अपने विद्यालय में आ पहुँचे, तो उन्होंने जो तपस्या के काल में, अपने मनस्तव का शोधन किया और अपनी प्रतिक्रियाओं को विचित्र बनाया और उन्होने जो लेखनियाँबद्ध की उस काल में, वे लेखनियाँ बेटा! ब्रह्मचारियों के मध्य में आई। मेरे प्यारे! देखो, ब्रह्मचारी ऋषि की उन लेखनियों को अपने में पान करते रहे। परन्तु उन्होंने एक लेखनीबद्ध की शतपथ ब्राह्मण की। जिसमें उन्होंने लोकों का वर्णन किया है। मानो देखो, उन्होंने भिन्न-भिन्न प्रकार के लोकों की विवेचनाएँ की। सबसे प्रथम वे मानो देखो, यागों की कल्पना करने लगे और भिन्न-भिन्न प्रकार के याग और उन यागों के क्रिया कल्पना करने वाले, भिन्न-भिन्न लोकों का वर्णन उन्होंने किया।

तो मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने एक कन्या याग का भी वर्णन किया है। मैंने बहुत पुरातन काल में, आज का हमारा वेद का पठन-पाठन और कुछ मेरे प्यारे महानन्द जी के प्रेरणाबद्ध आधार पर आज हम अपने इन विचारों को व्यक्त कर रहें हैं। बहुत पुरातनकाल हुआ जब बेटा! इन वाक्यों को लेकर ऋषि मुनियों ने, अपने में समाधिस्थ होकर के यागों का वर्णन किया है। याग का वर्णन करते हुए उन्होंने बेटा! सबसे प्रथम कन्या याग का वर्णन किया। हमारे यहाँ,जहाँ नाना प्रकार के याग होते है, जैसे वाजपेयी याग है, अग्निष्टोम याग है, अश्वमेघ याग है और मुनिवरो! देखो, देवी याग है पुत्रेष्टि याग और वृष्टियागों का वर्णन प्रायः वैदिक साहित्य में आता रहता है।

परन्तु वहाँ एक कन्या याग का भी वर्णन आता रहता है। हमारे यहाँ आदि ऋषियों ने बेटा! वैदिक साहित्य को विचारा और वैदिक साहित्य में मानव की प्रतिक्रियाओं का, उनके जीवन के क्रियाकलापों का बेटा! वैदिक मन्त्रां को लेकर के विश्लेषण किया और वह विश्लेषण क्या है? मैं उसमें ही जाना चाहता हूँ।

धर्म और राष्ट्र एक सूत्र के मनके

बहुत पुरातन काल हुआ जब ऋषि मुनियों ने बेटा! इसके ऊपर विश्लेषण किया है। उन्होने कहा मानव के जीवन में जब आध्यात्मिक याग और मानवी प्रतिभाओं में रत होकर के मानो यागों का चलन उसका एक धार्मिक और एक व्यावहारिक क्षेत्र बन जाता है। आधुनिक काल का मानव कहता है कि धर्म मानो देखो, भिन्न है और राष्ट्रीयवाद भिन्न कहलाता है। परन्तु इससे पूर्व मेरे प्यारे महानन्द जी अपने कुछ शब्दों का उद्गान रूप में गान गा रहे थे। मैंने अपने विचारों को ले करके मानो ये कहा है कि राष्ट्र और धर्म एक ही सूत्र के दोनों मनके है। राष्ट्र का जब वर्णन आता हैं तो वह कर्तव्यवादियों की सहायता के लिए आता है, मानो देखो, धर्म के मर्म को जानने वाले मुनिवरो! देखो, वे प्राणियों में रत रहते हैं। परन्तु एक क्षेत्र वह है जिसे मुनिवरो! हम आध्यात्मिकवाद कहते है। आध्यात्मिकवाद की प्रतिक्रियाओं का मैंने बेटा! बहुत पुरातन काल में मानो जिसे धार्मिक ऊर्ध्वा में गति कहते है। धार्मिक क्षेत्र में मानव अपने धर्म की प्रतिक्रियाओं को लाता है। तो मेरे प्यारे! देखो, मुझे ऐसा स्मरण है। ऋषि मुनियों ने धार्मिक और राष्ट्रीयता को एक ही सूत्र में, दोंनो एक ही सूत्र के मनके होने से, दोनों ही विचित्र कहलाते है।

स्वाभाविक गुण है धार्मिकता

तो मेरे प्यारे! देखो, मैं इन वाक्यों पर जाना तो आज नहीं चाहता हूँ। परन्तु विचार यह कि मानव आध्यात्मिकवाद में, धार्मिक और देखो ''धर्मं ब्रह्माः'' धर्म तो मानव का कर्त्तव्य है और आध्यात्मिकवाद और की देखो, उसमें ऊर्ध्वा गति कहलाती है। जहाँ वह परमपिता परमात्मा की पगडन्डी का उत्सुक बन जाता है। मानो उसे आध्यात्मिक विज्ञान, आध्यात्मिक धारा कहते हैं। धर्म उसे कहते हैं जैसे मानो देवता अपना क्रियाकलाप कर रहे है। अपने-अपने रूपों में रत हो रहें हैं, जैसे अग्नि का गुण है तेजोमयी। तो तेजोमयी उसका धर्म है। परन्तु जल का जो धर्म है वह शीतल है, प्राणवर्ध्क है। देखो, पृथ्वी का जो गुण है वह गुरूत्व है। देखो, इसी प्रकार वायु का जो गुण है वह गति है। उसमें संचारित रूप से जो क्रिया हो रही है। चाहे वह मानव के शरीर में हो, चाहे वह बाह्य-जगत में हो। मानो देखो, वह एक अप्रतम् धर्म कहलाता है। जिससे प्रत्येक मानव अपने जीवन में धार्मिक बनता है।

तो धार्मिक किसे कहते है? क्योंकि वह तो उसका स्वाभाविक गुण है धार्मिक होना तो उसका स्वाभाविक गुण है। उस धर्म को हम कहाँ तक ले जाएँ। उस धर्म को मानो विज्ञान से लेकर के यौगिकवाद तक ले जाते है, आध्यात्मिक विज्ञान में भी ले जाते है।

प्रथम देव लोक में

तो विचार मंगलं ब्रहेः व्रत्पृहि लोकाम् वेद का आचार्य कहता है। वैदिक सूत्र वाला कहता है मुनिवरो! देखो, हमारे यहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार के यागों का चयन जब वैदिक आचार्यों ने बेटा! निहित किया तो एक समय याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के यहाँ ऋषि मुनियों का और ब्रह्मचारियों का, दोनों का परस्पर विचार विनिमय होने लगा। तो ब्रह्मचारियों ने ये कहा कि यह कन्या याग का वर्णन है और कन्या याग में भी लोकों का वर्णन आया है। मानो जैसे पितरो ब्रह्मा लोकाः वेद का वाक् कहता है कि कन्या जब इस संसार में आती है तो सबसे प्रथम वह देवलोक

में रहती है और वह देव लोक क्या है?

देवताओं का लोक

तो मेरे प्यारे! जब बाल्य शिशु होता है, तो शिशु मानो देखो देव लोक में रहता है। उसकी देवता रक्षा कहते हैं। मानव उसकी रक्षा नहीं करता है। बाल्य है, परन्तु उसे संसार का बोध भी नहीं है। वह संसार का बोधक भी नहीं है। परन्तु देखो, उस समय संसार का बोध कौन करा रहा है? वे जो देवता है, जो इस मानव के शरीर में विद्यमान है। मेरे प्यारे! जो प्रवृतियों को एक रूप में कटिबद्ध कर देते हैं। जब बाल्यकाल होता है तो बाल्यकाल में कौन देवता है? बेटा! देखो, वह सूर्य प्रकाश देता है, अग्नि तेजोमयी बनाती रहती है। मानो देखो, सूर्य उसे प्रकाश देता है, अग्नि उसे उष्णता देती रहती है। चन्द्रमा अमृत देता रहता है। इसी प्रकार उसी के संरक्षण में बेटा! देखो, न नग्न का ज्ञान होता है, न उसे वस्त्र का ज्ञान होता है वह देखो, जैसे माता के गर्भ में पनपा है। ऐसे ही वह पृथ्वी माता की गोद में आकर के, उसके गर्भ में आकर के बेटा! अपने में मौन हो जाता है। मानो उसका नाम हमारे यहाँ देवलोक कहते हैं। देवलोक का अभिप्राय यह है बेटा! लोक कहते है स्थली को और मुनिवरो! जहाँ देवता वास करते हैं उसे देवलोक कहते हैं। जहाँ देव प्रवृत्ति बनी रहती है, जिस भी काल में मानव की देव प्रवृत्ति बन जाती है वह मानो देखो, देवताओं का लोक कहलाता है।

पितर लोक

इसके पश्चात बेटा! वही कन्या जब देवलोक से उपराम होती है। तो मानो संसार के क्षेत्रों में परिणत हो जाती है तो वह पितरलोक कहलाता है। वे पितर कौन हैं? बेटा! जो उसकी रक्षा करते हैं। मेरे प्यारे! देखो, वे पितर, जो गृह में माता पिता के रूप में रहते हैं। विद्यालयों में आचार्यों के रूप में रहते हैं। मानो देखो, वे उसके पितर कहलाते हैं। उन्हीं की संरक्षणता में, उनके जीवन की धाराओं का प्रायः जन्म होता रहता है। वह जो धाराओं का जन्म है वह ही मानो देखो, उनका पितर लोक कहलाता है।

पितर लोक का अभिप्राय

तो मेरे प्यारे! पितर लोक का अभिप्राय क्या है? मानो देखो, आचार्य पितर है। माता-पिता पितर है। मानो देखो, जो अपने से आयु में प्रबल है, वे उसके पितर कहलाते हैं। तो वह उनकी संरक्षणता कहलाती है। तो कन्या का दायित्व बेटा! पितरों के ऊपर हो जाता है। वे पितर लोकं भवितेः ब्रह्माः वेद की धारा कहती है कि हम पितरों की धाराओं में, सदैव रत रहते हैं।

वे पितर हमारे जीवन की एक मौलिकता बन करके रहते हैं। तो मेरे प्यारे! देखो, एक कन्या याग का जहाँ वर्णन आता है। तो कन्या याग के वर्णन में बेटा! पितर लोक का भी वर्णन आता है। मानो देखो, जब वे माता पिता के संरक्षण में कन्या रहती है, विद्यालय में रहती है। तो विद्यालय में आचार्य उसे त्याग युक्त बना देता है, कैसे त्याग युक्त बनाता है? मुनिवरो! देखो, उसे विद्या का अध्ययन कराता हुआ, उसे बोध करा देता है कि यह संसार मानो देखो, क्या है? इस संसार में देखो, जहाँ तुम विद्यमान हो ये पितर लोक है। तो पितरो के लोक में बेटा! जब वह रत रहने लगती हैं। तो पितरों की प्रतिभा उसके समीप आनी प्रारम्भ हो जाती है।

आचार्य का लोक

तो मेरे पुत्रो! मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें यह निर्णय दिया। परन्तु महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज की ये तपस्या का पफल है। मानो उन्होंने जो प्रत्येक क्षेत्र में अपने में क्रियाकलाप किया है और उसको मुनिवरो! देखो, क्रिया में लाने का प्रयास किया। तो उन्होंने कहा-ये पितरलोक मानो देखो, आचार्यों का लोक है। आचार्य

कुल में जब प्रवेश करते हैं तो वे अपने गर्भ में धारण करके मानो देखो, कन्या को प्रतिभाशाली बना देते हैं। जैसा मैंने पुरातन काल में कहा है, माता मदालसा का जीवन मुझे स्मरण है, माता मदालसा विद्यालय में अध्ययन कर रही है। परन्तु त्याग पूर्वक अध्ययन हो रहा है। यह उसका पितर लोक है। गृह में भी पितर लोक है, विद्यालय में भी पितरलोक है, मार्ग में भी पितरलोक है।

तो मेरे प्यारे! देखो, इसी संरक्षणता में उनका पालन हो रहा है। वे अपने में भव्यता को प्राप्त हो रहे है। वेद का मंत्र ये कहता है, ''कन्यां पितृलोकं ब्रह्माः वाचं ब्रह्मेः देवत्वां लोकाः'' वेद के एक-एक मंत्र को लेकर के ऋषि मुनियों ने बड़ा अनूठा अनुसंधान किया। आज मैं बेटा! उस विशेषता में तो जाना नहीं चाहता हूँ। केवल विचार विनिमय में क्या? कि वह कन्या याग मेरे पुत्रो! देखो, अपने पितरों में इसका पालन हो रहा है। पितरजन मानो देखो, उसकी रक्षा कर रहे हैं और पितरों का ज्ञान कौन करा देते हैं? जो जड़ देवता हैं, जो शरीरों में क्रियाकलाप कर रहे हैं, उनका बोध कौन कराता है? बेटा! देखो, चैतन्य देवता, आचार्य कराता हैं। आचार्य कहता है, हे देवत्वं! हे ''मम ब्रहेः हम तुम्हारे पितृभिः लोकाम्'' आओ, पितर याग करेंगे। मेरे प्यारे! देखो, वह पितरलोक में प्रवेश हो करके पितरों का याग, हम पितरों की सेवा करें। तो मेरे प्यारे! देखो, यह पितरलोक कहलाता है।

पतिलोक

वेद का आचार्य कहता है। ''कुलेभ्यो ब्रह्माः कुलेभ्योः पतस्य कृते प्रह्रे व्रातं वाचन्नमं ब्रह्माः'' वेद का वाक् कहता है। पितर लोक से मानो उपराम होते है। तो मेरे प्यारे! वह ''कुलेभ्योः नमः'' कुल का परिवर्तन हो करके वे पतिलोक को प्राप्त हो जाती हैं। वही कन्या जो देवलोक में थी, मानो पितर लोक में थी, अब पति लोक में चली गई। मानो देखो, पति कहते हैं, रक्षक को। वास्तव में देखो, पति की बड़ी विस्तृत व्याख्या हमारे वैदिक साहित्य में आती रहती है। हमारा वैदिक साहित्य देखो, पति की विवेचना करने वाला, सबसे प्रथम तो मानो देखो, अपनेपन में जब कन्या ये स्वीकार कर लेती हैं कि मैं अधिपत्यवादी बनूँ। तो मानो देखो, वह पति कुल को अपने में प्रवेश करा देती हैं। तो यह उसकी लौकिक विवेचना हुई कि उसका साधन मानो परिवर्तन हो गया है, वह पति लोक को प्राप्त हो गई हैं। पति लोक में मानो अपना वास किया है। तो मानो देखो, ये तो व्यावहारिक व्याख्या हुई।

पति की वैदिक व्याख्या

वेद का ऋषि इसकी एक बड़ी विचित्र व्याख्या करता है। वह कहता है ''कुल्प प्रमाणां ब्रह्मेः कन्या देवो ब्रहे्र पतिलोकश्चमम्'' मानो देखो, परमपिता परमात्मा सबका पति है। वह सबका स्वामित्व करने वाला है। मानो देखो, वह पति है। वह कैसा अनुपम पति है? तो मेरे प्यारे! यह कन्या व्यावहारिक पति कुल को प्राप्त हो गई है, लोक में प्रवेश कर गई है। तो मुनिवरो! देखो, उसके शासन का परिवर्तन हो गया। मानो व्यावहारिक जो जगत है उसका आदान और प्रदान हो गया है। जब आदान प्रदान हुआ तो आदान-प्रदान के पश्चात मानो देखो, वही पति अपने में मानो देखो, शिशु की स्थापना करता है। वे पितर बनने की इच्छा प्रकट करता है। तो मानो देखो, वह जो पितर बन रहा है और वह जो परमपिता परमात्मा पितर है वह कैसा अनुपम है? मेरे प्यारे! वह एक-एक परमाणु को, एक-एक अणु को सुगठित कर रहा है। एक-एक अणु, परमाणु को मेरे प्यारे! वह साधारण पितर लौकिक प्रतिक्रियाओं को नहीं जानता। मानो उन प्रतिक्रियाओं को मेरा प्रभु जानता है, जो निर्माणवेत्ता है, जो विश्वकर्मा बना हुआ है। मेरे प्यारे! देखो, वह कैसा विज्ञानमयी स्वरूप कहलाता है। परन्तु साधारण, व्यावहारिक पतियों को इसका ज्ञान नहीं होता! मानो वह परमपिता परमात्मा उसकी रचना करता है।

पिता ब्रह्मेः जब वह पितर बनने की इच्छा प्रकट करता हैं। तो अपनी देवी से कहता है-देवी! अब हम पितर

याग में प्रवेश कर रहे है। तो उस समय वे पितर याग करते है, परन्तु उसके परमाणुओं की जो प्रतिक्रियाएँ हैं, वे कैसे होती है इसको न माता जानती है, न पितर जानता है, न पति जानता है, न पत्नी जानती है।

नियन्ता पति

मेरे प्यारे! देखो, वह जो मेरा प्यारा प्रभु है वह जो संसार का नियन्ता है अथवा संसार का पतितव करने वाला हैं। वह माता के गर्भस्थल में परमाणु को आदान-प्रदान करता हुआ उनको सुगठित कर देता है, उनका मिलान कर देता है। वह विश्वकर्मा बनकर के रचना कर रहा है और कैसी रचना है? माता के गर्भस्थल में माता के मस्तिष्क से लेकर के, पितरों के मस्तिष्क से लेकर के जिन परमाणुओं का प्रेक्षण हुआ है मानो उन्हीं पितरों से उनकी प्रवृत्तियों का निर्माण करा देता है। मेरा प्रभु कितना वैज्ञानिक है? बेटा! वह कितना विश्वकर्मा है। यदि माता मानो यौगिक बन गई है तो यौगिक परमाणुओं से बालक का निर्माण कर देता है। यदि माता और पितर दोनो मानो देखो, राष्ट्रवादी बन गए है तो पुत्र भी राष्ट्रीय अंकुरो से निर्माणित हो जाता है। तो मेरे प्यारे! इसको कोई नहीं जानता। मेरा प्रभु ही जानता हैं, मेरा देव ही जानता है कि जो मेरा महापिता है, जो संसार का नियन्ता है। माता के गर्भस्थल में विद्यमान हो करके बेटा! परमाणुओं का आदान प्रदान करता रहता है। वे परमाणु मानो अपनी अपनी स्थलियाँ पर निर्मित होकर के सर्वत्र ब्रह्माण्ड के परमाणु उसमें निहित हो जाते हैं। मेरा प्रभु वह कितना महान पति है, कितना वह वैज्ञानिक है।

मानो देखो, इसीलिए माता मदालसा का तो ये कथन हो गया था। माता मदालसा ने तो ये कहा था कि हे संसार के पतियों! तुम मानो देखो, इतनी प्रतिभा नहीं जानते, जितना वह मेरा स्वामी है, प्रभु है। वह कैसे निर्माण करता है? मानो वह कैसे ब्रह्मवेत्ता का निर्माण करता है गर्भ स्थल में, इसको तू नहीं जानता। मानो देखो, परमात्मा जानता है। मानो देखो, उसकी प्रतिभा को लेकर के माता के लिए प्रत्येक नौ माह में, नौ प्रकार का अन्नाद और नौ प्रकार का आहार बन जाता है। तो उन कणों को लेकर के उसका निर्माण करता है। उसी प्रकार की वृत्तियाँ बन जाती है। मेरे प्यारे! देखो, मदालसा ने कहा शिशु का प्रवेश करो, तो प्रभु की गोद में चली जाओ।

तपस्या का फल

प्रत्येक मेरी पुत्रियों का कर्त्तव्य है कि वह प्रभु की गोद में चली जाए, जिससे इस संसार का निर्माण हो जाए। संसार में ब्रह्मवेत्ता और बुद्धि जीवी प्राणियों का जन्म होता रहे। ऐसा मानो देखो, माता मदालसा ने कहा है। मानो जहाँ शिशु का प्रवेश हुआ, प्रभु का चिन्तन करना। मानो देखो, शुद्ध और बुद्ध की विवेचना करना। संसार की कोई वस्तु नष्ट नहीं होती। किसी वस्तु का विनाश नहीं होता। जब विनाश नहीं होता तो उन्हीं की विवेचना करना उसका कर्त्तव्य बन गया और जब माता की लोरियों का पान करने लगा, वही शिशु, वही बाल्य तो मानो देखो, उस समय वेद मंत्र की व्याख्या कर्णों में प्रवेश करती है कि ये संसार तो कुछ है ही नहीं। ये संसार तो निस्सार है, ये संसार तो अपवाद वृत्तियों में रत होता रहता है। इस प्रकार की विवेचना करती रहती। प्रत्येक अंकुरो में बेटा! ज्ञान और विज्ञान को परिणत कराती रहती। तो मुनिवरो! देखो, उसी तपस्या का पफल ये हुआ कि माता मदालसा का पाँच वर्ष का ब्रह्मवेता पुत्र भंयकर वन को चला गया। तपस्वी बन गया, बुद्धिजीवी बन गया। प्रभु का गुणगान गाने वाला बन गया। मेरे प्यारे! देखो, संसार एक विचित्र बन गया।

लोकों का वर्णन

आओ मुनिवरो! देखो, मैं विशेष विवेचना तो देने नहीं आया हूँ। विचार केवल क्या है? मुनिवरो! देखो, लोकों का वर्णन महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने किया और याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने बेटा! पितर लोक और

तप का महत्व

पति लोक को प्राप्त होने वाली कन्या बेटा! अपने पति के अप्रतम देखो पति कुलेभ्यो मानो देखो, उस लोक को प्राप्त हो जाती है। उस लोक में प्रवेश करके उसको अपना गृह लोक बना लेती है। पवित्र लोक बनाकर के मानो देखो, वह उसका पतिलोक ही नहीं रह जाता। उस पर उसका स्वत अधिकार बन जाता है। उसका भी लोक बन जाती है। शासन का परिवर्तन हो गया है। तो मानो देखो, इस प्रकार जो परमपिता परमात्मा जो संसार का नियन्ता पति है।

चार प्रकार की सृष्टियाँ

तो मुनिवरो! देखो, पतियों की विवेचना का अभिप्राय यह कि पति कहते है, रक्षक को। मानव को रक्षा करनी चाहिए। एक दूसरे की रक्षा में, जब ये मानव परिणत रहता है, उसी में लगा रहता है तो जीवन महान बना रहता है। जैसे मुनिवरो! देखो, संसार का पिता बन गया। मुनिवरो! देखो, वह प्रकृति का पति बन गया। प्रकृति का पति बनकर के नाना प्रकार के व्यंजनों वाले इस संसार की रचना हो गई। चार प्रकार की सृष्टियों में ये संसार विभक्त हो गया। चाहे वह पृथ्वीमण्डल में रहने वाला मानव समाज हो, चाहे मघल में रहने वाला हो, किसी भी लोक-लोकान्तरों में गति करने वाला क्यों न हो। परन्तु ये ही चारों प्रकार की सृष्टियाँ कहलाती है। किसी में अग्नितत्त्व प्रधान है, तो किसी में दूसरे तत्त्व की प्रधानता है, तो वे भी उसी में रत है। मानो देखो, इस प्रकार जघम-अण्डज सृष्टि ये लोकलोकान्तरों में बेटा! देखो, निहित रहने वाली है।

आज मैं विशेष विवेचना तुम्हें देने नहीं आया हूँ। केवल संक्षिप्त परिचय देने आया हूँ और परिचय क्या है? मेरे प्यारे! देखो, कन्या यागां भविते लोकाम्। वेद का ऋषि कहता है, याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने बेटा! कोई स्थली ऐसी नहीं, कोई विषय ऐसा नहीं जिसको उन्होंने अपने में धारण नहीं किया हो। मानो देखो, सर्वत्रता में परिणत न हो। वे सब विषयों को अपने में धारण करते रहे और एक कन्या याग का विषय ऐसा है जिसमें संसार के अनन्य विषय मानो इसके अन्तर्गत प्रवेश कर जाते है।

कन्या के विभिन्न लोक

तो मेरे प्यारे! देखो, विचार विनिमय क्या? कन्या का पहला लोक, देवलोक रहता है, देवता रक्षा करते है। पितरलोक में पितरजन रक्षा करते रहते हैं और पतिलोक को प्राप्त होकर के पति रक्षा करता है। पति का अभिप्राय ये कि जो रक्षक है। सबसे महान पिता तो वह है मानो देखो, पति तो वह है जो मुनिवरो! देखो, संसार की रक्षा करने वाला है। जो परमपिता परमात्मा के नामों से वर्णन किया जाता है। इस संसार में परमपरागतों से बेटा! रजोगुण छाया हुआ है। उसमें मानो एक दूसरे के नष्ट करने की प्रवृति भी बनी रहती है। मानो देखो, विचारधारा आ जाती है और वह जो मेरा स्वामी है, पति है। मानो देखो, उसमें ये रजोगुण, सतोगुण नहीं व्यापते हैं। न तमोगुण व्यापता है। वह अपने को व्याप्य बना करके मुनिवरो! देखो, इसमें सबको धारण कर रहा है। अपने में मानो ढ़क लेता है जैसे माता अपने गर्भस्थल में, अपने बाल्य को शांत मुद्रा में ढ़ाप लेती है। इसी प्रकार मेरे पुत्रो! देखो, ये ब्रह्माण्ड भी इसी प्रकार ढ़ापने की क्रिया व्रतो में रत होता रहता है।

तप से निर्माण

तो आओ मेरे प्यारे! आज का हमारा ये विचार क्या कह रहा है? हम बेटा! अपने जीवन को महान बनाने का प्रयास करें। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने बारह वर्ष का तप करने के पश्चात एक शतपथ ब्राह्मण नाम की पौथी का निर्माण किया। उस पौथी में नाना प्रकार के यागों का चयन किया। सबसे प्रथम मुनिवरो! देखो, उन्होंने देवयाग, उसके पश्चात वाजपेयी याग, अग्निष्टोम याग, वृष्टियाग, पुत्रेष्टियाग, कन्या याग, देवीयाग, अजामेध्याग,

अश्वमेध याग, नाना प्रकार के यागों का चयन होता रहता है।

जीवन की पवित्र धारा

परन्तु विचार केवल क्या हैं आज हमारा? कि हम कन्या याग में प्रवेश कर जाएँ। हे कन्या! तू अपने याग को ऊँचा बनाती हुई, देव लोक को विचारते हुए, देव प्रवृति बना। मानो देखो, पितरलोक में रहने से अपनी पितर प्रवृति बना और पति लोक को प्राप्त होकर के अपनी इन्द्रियों का संयम करके मानो देखो पति लोक को प्राप्त हो करके अपने जीवन को महान और पवित्र बना करके अपने जीवन की धारा को महान बनाना चाहिए।

तो ये है बेटा! आज का हमारा वाक् मैं संक्षिप्त परिचय देने के लिए आया हूँ। मैं कोई व्याख्या या विशेष विचार देने नहीं आया। केवल अपनी विचार धारा, वैदिक साहित्य क्या कहता हैं? वेद हमें किस मार्ग के लिए प्रेरित कर रहा है? इस वाक् का बेटा? मैंने संक्षिप्त परिचय दिया है। समय मिलेगा तो मैं इसकी शेष चर्चाएँ भी देता रहूँगा।

ये आज का विचार हमारा क्या कह रहा है? मुनिवरो! देखो, बाल्यं ब्रह्म वाच्म्रहेः कन्या देव लोक में, पितर लोक में, पति लोक को प्राप्त हो करके उसके पश्चात वह पितर बनने के लिए तत्पर हो जाती है। तो ये है बेटा! आज का वाक्, अब समय मिलेगा, मैं शेष चर्चाएँ कल प्रगट करूँगा। ओ३म् देवन्ध्विताः मामृतिः वन्धना वाचन् गतौः सर्वः मामृतिः। ओ३म् वाचन्नमः सर्वश्चमं आपोः थं आभ्यां दधि ब्रह्म आपः। ओ३म् जन वरूणात प्रजाहम् आपाः रथम्।। 15.09.1985 लाजपत नगर

५ विष्णु स्वरूप 1985 10 17

जीते रहो, देखो, मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भाँति, कुछ मनोहर वेद-मंत्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद मंत्रो का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन किया जाता है क्योंकि वे परमपिता परमात्मा विष्णु है, कल्याण करने वाले हैं। सत्यमयी माने गये हैं। हम उस परमपिता परमात्मा विष्णु की महिमा का प्रायः गुणगान गाते ही रहते हैं। क्योंकि आज के हमारे वेद के मंत्रो में, उस विष्णु की महिमा का वर्णन आ रहा था। जो विष्णु हमारा कल्याण करने वाला है। जो ममतामयी में रत रहने वाला है वह परमपिता परमात्मा विष्णु हमारी अन्तरात्मा में विद्यमान रहता है।

विष्णु के पर्यायवाची

मेरे प्यारे! हमारे यहाँ वैदिक साहित्य में विष्णु के बहुत से पर्यायवाची शब्द आते हैं। जैसे हमारे यहाँ विष्णु नाम परमपिता परमात्मा का वाची माना गया है, विष्णु नाम माता का है, यज्ञोमयी विष्णु और आत्मा और राजा को भी विष्णु कहा जाता है। मानो सूर्य का नामोकरण भी विष्णु है। हमारे यहाँ जिसमें पालना करने की क्षमता होती है। वही मानो विष्णु माना गया है तो आज हम विष्णु के लिए, उस परमपिता परमात्मा की महती में सदैव रत रहें।

एक समय बेटा! मुझे ऐसा स्मरण है महर्षि कागभुषुण्डी और लोमश मुनि महाराज दोनों अपनी स्थली पर विद्यमान थे मानो कहीं से भ्रमण करते हुए, उनके द्वारा सुधनवृचसम्भूति मुनि महाराज उनके समीप आ पहुँचे और ऋषि सम्भूति ने कहा कि हे प्रभु! मैं जानना चाहता हूँ कि ये विष्णु क्या है? क्योंकि मैं प्रातःकालीन विष्णु की महिमा का वर्णन, वेद मंत्रों में अध्ययन कर रहा था। अब मेरे हृदय की ये उत्कृष्ट इच्छा है कि मैं विष्णु को जानूँ। तो हे प्रभु! मैं जानना चाहता हूँ कि ये विष्णु क्या है? कागभुषुण्डी जी बोले कि हे ऋषिवर! तुमने जो विष्णु के सम्बन्ध में अब तक अध्ययन किया है। उसका वर्णन करो। तो ऋषि ने कहा प्रभु! मैंने तो केवल इतना अध्ययन किया है कि वह पालन करने वाला है। वह पालना करता है इसीलिए वह विष्णु है वह सत् है। तो मुनिवरो! उन्होंने कहा कि हमारे यहाँ यौगिक क्षेत्र में भी विष्णु की महिमा का वर्णन आता है?

तो मेरे प्यारे! देखो, कागभुषुण्डी जी ने कहा कि और क्या जानते हो विष्णु के सम्बन्ध में? तो ऋषि ने कहा कि विष्णु मेरे विचार में तो सर्वांघ विष्णु ही कहलाते है। तो मेरे प्यारे! कागभुषुण्डी ने कहा-नहीं, तुम जो भी कुछ जानते हो वर्णन करो। तो ऋषि अंत मैं मौन हो गया कि प्रभु! मैं इससे आगे विष्णु को नहीं जानता हूँ। उन्होंने कहा तो विराजमान हो जाओ अब मैं विष्णु की तुम्हें विवेचना कर रहा हूँ।

पालनकर्त्ता विष्णु

विष्णु का विश्लेषण करने वालो ने बेटा! विष्णु की बहुत ऊर्ध्वा में महिमा का बखान किया है अथवा उसकी महिमा का उद्गीत गाया है। तो विष्णु नाम यहाँ पालन करने वाले को कहा जाता है। परन्तु पालना का अभिप्राय क्या है? पालना हम किसे कहते हैं? तो मेरे प्यारे! इस सम्बन्ध में पालना का अर्थ है, रक्षक। जो हमारी रक्षा कर रहा है वही महान विष्णु कहलाता है।

तो मेरे प्यारे! देखो, ऋषि कहता है, कागभुषुण्डी ने कहा कि विष्णु नाम हमारे विचार में राजा को भी कहा गया है, परन्तु राजा भी पालन करने वाला है। राजा भी अपने अनूठे ज्ञान और विज्ञान का उपार्जन करता हुआ

अपने में अनुशासन करता हुआ वह विष्णु की उपाधि को प्राप्त होता रहता है। मुझे ऐसा प्रतीत होता रहता है कि पुरातनकाल में अतीत का जो काल है, उसमें विष्णु नाम मानो सूर्य के राजा को कहा जाता है। सूर्य का जो राजा है वह पालना में रत रहने वाला है। ये बड़ा आश्चर्य का शब्द महर्षि लोमश मुनि ने किया।

प्रत्येक लोक में प्राणी

मेरे प्यारे! देखो, सूर्य में, क्या प्राणी रहते है? जो वहाँ का राजा विष्णु कहलाता है तो मेरे प्यारे! इसके दो रूप बनते हैं। एक रूप वह बनता है जो विष्णु लोक लोकान्तरों का अधिराज परमपिता परमात्मा है। एक विष्णु नाम हमारे यहाँ ''ब्रह्मवाचो देवाः'' जो विष्णु मुनिवरो! देखो, सूर्य लोक का राजा है, उसको भी विष्णु कहते हैं। प्राणी तो मुनिवरो! प्रत्येक लोक-लोकान्तरों में माने गये हैं।

प्राणी का अभिप्राय

आज जब हम ये विचारते हैं कि लोक-लोकान्तरों में प्राणी रहते हैं तो प्राणी का अभिप्राय क्या हैं? तो मुनिवरो! देखो, प्राणी उसे कहते हैं जहाँ प्राण गमन करता हो। जहाँ मानो प्राण अपने में रत रहने वाला हो। वह तीनों प्रकार की आभाओं में अग्नि, जलाशय और पार्थिव ये तीन प्रकार के हमारे यहाँ प्राणी माने जाते हैं। एक अग्नि प्राणी होते है एक मानो जलाशय, जलप्रधान में रत रहने वाले प्राणी है। एक मानो पार्थिवतत्त्व माने जाते हैं। तो ये तीनों प्रकार के जो प्राणी है, इनमें प्राण गमन करता रहता है, क्योंकि गति चाहे वह अग्नि में हो, चाहे जलाशय में हो, चाहे वह पार्थिव में हो। परन्तु सर्वत्रता में गति रहती है। तो जहाँ भी गतिवाले प्राणी रहते हैं वहीं मानो बेटा! देखो, राजा होता है, जो धिराज कहलाता है।

वास्तव में यदि हम गम्भीरता से अध्ययन करते हैं। तो हमारे यहाँ राजा की कोई आवश्यकता नहीं है। परन्तु राजा कहते हैं जो रक्षक होता है जैसे हमारे मानव शरीर में, प्राण गति करता है। मानो प्राण धिराज कहलाया जाता है। वह आत्मा भी धिराज है जो पालन करने वाला मानो देखो, स्थिर करने वाला है।

तो बेटा! इसी प्रकार वेद के ऋषि कागभुषुण्डी जी कहते हैं कि हमारे विचार में तो ये आता है कि तीनों प्रकार के प्राणी मानो देखो, प्रत्येक लोक-लोकान्तरों में प्राप्त होते हैं। प्रायः उनके उद्गीता हमें प्राप्त होती हैं। मानो देखो, कहीं आग्नेय प्राणी रहते है। सूर्य जो मण्डल है पार्थिवतत्त्व उसमें आग्नेय प्राणी रहते है। पृथ्वी में जहाँ पार्थिवतत्व है। वहाँ मुनिवरो! देखो, पार्थिव प्राणी रहते हैं, जहाँ जल है वहाँ मानो जल प्रधान वाले प्राणी रहते हैं। तो नाना लोक-लोकान्तरों में रत रहने वाला प्राणीमात्र अपने धिराज को चुनौती प्रदान करता रहता है। तो आज हमें विचारना है कि हम प्राणों की आभा में रत होते चले जाएँ।

तो मेरे प्यारे! कागभुषुण्डी जी कहते हैं कि विष्णु नाम मानो देखो, राजा को कहा गया है, रक्षक को कहते हैं। इसीलिए जो रक्षा करने वाला है, प्रधानता में रत करने वाला है वह विष्णु कहलाता है। परन्तु देखो, उन्होंने कहा हे कागभुषुण्डी! हे ऋषिवर! तुम्हें ये प्रतीत होगा कि विष्णु नाम मानो देखो, सूर्य को कहा गया है, जो सूर्य में रत रहने वाला प्राणी है। वह धिराज है, वह विष्णु है, इसीलिए यह भी धिराज है, विष्णु है, कल्याण करने वाला है जो पृथ्वी का स्वामीत्व करने वाला है। तो मेरे प्यारे! देखो, यह विष्णु कहलाता है। परन्तु योगाभ्यासवादियों ने बेटा! देखो, विष्णु की बड़ी विवेचना की है कि हमारे यहाँ यज्ञोमयी विष्णु का वर्णन आता है। तो मानो देखो, एक समय हम भ्रमण करते हुए महर्षि सोमवृत्तिका मुनि के द्वार पर पहुँचे। वृत्तिका मुनि से कहा कि हे प्रभु! वेद में विष्णु का बड़ा वर्णन आता है। ये विष्णु क्या है? तो व्रेत ऋषि ने कहा कि महाराज! मैं भी इसको अच्छी प्रकार नहीं जानता। परन्तु माता अरून्धती और वशिष्ठ मुनि महाराज के यहाँ विष्णु याग की रचना होती

रहती है उनके द्वार पर चले जाओ।

तो मेरे प्यारे! देखो, ऋषिवर भ्रमण करते हुए, कागभुषुण्डी जी कहते हैं, जब हम श्वेतकेतु इत्यादि मुनिवर और हम मानो देखो, वशिष्ठ मुनि के आश्रम में पहुँचे। वशिष्ठ मुनि के आश्रम में ब्रह्मचारियों ने जो अध्ययनशील थे उन्होंने स्वागत किया। मानो देखो, उन्हें आसन दिया। माता अरून्धती और वशिष्ठ मुनि महाराज अपने आसन पर विद्यमान थे। कुछ विचार विनिमय हो रहा था। जब उनके द्वार पर पहुँचे, तो ऋषिवर ने अपने आसन को त्याग कर कहा आइए कागभुषुण्डी जी! पधारिये। तो मानो वे विराजमान हो गए। जब विराजमान हो गए तो कुछ चर्चाएँ होने लगी। वशिष्ठ मुनि बोले कहो ऋषिवर! आपका कैसे आगमन हुआ है।

यज्ञोमयी विष्णु

उन्होंने कहा-प्रभु! आज हम वेदों का अध्ययन कर रहे थे और वेदों में आ रहा था। ''यज्ञोमयी विष्णुः'' ये यज्ञ कैसे विष्णु है? उन्होंने कहा ये जो याग है अथवा यज्ञ है ये विष्णु इसलिए है क्योंकि ये परमपिता परमात्मा से लेकर के और जितना भी सुचिंतन और महान क्रियाकलाप है वह सब विष्णु के गर्भ में ही परिणत हो जाता है। जैसे माता के गर्भस्थल में मानो हम जैसे शिशुओं का अंग-प्रत्यंग का मानो देखो, निर्माण होता रहता हैं वह निर्माण ब्रहे वह वृत कहलाता है। इसी प्रकार परमपिता परमात्मा जो यज्ञोमयी है, विष्णु है मानो देखो, उसके गर्भ में जितना परमाणुवाद है। वह सब निहित हो जाता है। जितना तरंगवाद है। वह सर्वत्र निहित हो जाता है। जब हम ये विचारते हैं कि परमपिता परमात्मा जो यज्ञोमयी विष्णु है जो परमाणुवाद का मानो देखो, समूह माना गया, वे समूह वृत्तियाँ है। जब योगेश्वर योगाभ्यास करता है तो विष्णु को अपने में धारण करने लगता है। तो वह धारयामि बना करके यज्ञोमयी विष्णु कहलाता है।

अग्नि स्वरूप विष्णु

तो मेरे प्यारे! देखो, वशिष्ठ मुनि ने कहा कि हमारे विचार में तो विष्णु नाम मानव में आत्मा का है। जो आत्मचिंतन करने वाले है उन्हें ये प्रतीत है कि ये विष्णु है। मानो देखो, आत्मा का नामोकरण विष्णु माना गया है। जब योगाभ्यास करने वाले मानो देखो, विष्णु की उपासना करते-करते बहुत दूरी चले जाते है। तो वह अपने अर्न्तहृदय में विष्णु का ध्यान करते हैं। बेटा! ये बड़ा विचित्र शब्द है कि अन्तरात्मा में अग्नाधान कैसे होता है? मेरे प्यारे! देखो, अन्तरात्मा में अग्न्याधान हो रहा है जैसे यज्ञशाला में यजमान अपनी देवी से कहता है। हे देवी! आओ, अब हम दोनो देखो, अग्न्याधान करेंगे। जब वे अग्न्याधान करके अपनी यज्ञशाला में प्रातःकालीन ब्रह्म का चिंतन करते हुए, प्रातःकालीन विष्णु की महिमा का वर्णन करते हुए देखो, ब्रह्मयाग से जब देव पूजा में परिणत होते है और अग्न्याधान करते हैं तो वे ''अग्नं ब्रह्माः अग्नं रूद्रो भागः'' देखो, वह अग्नि विष्णु है, वह अग्नि विष्णु कहलाती है क्योंकि वह तेजोमयी है, ऊष्णता देने वाली है, इसीलिए देखो, अग्न्याधान करके, यजमान आहुति देता है और कहता है कि हे देवी! आओ, हम विष्णु याग करेंगे विष्णुयाग जब प्रारम्भ होता है। तो मानो देखो, ''विष्णुश्चं ब्रह्म लोकां हिरण्यं वृथाः''।

मेरे प्यारे! देखो, विष्णु की विवेचना करने वाला अपने में रत हो जाता है। वशिष्ठ मुनि कहते हैं कि जब हम ब्रह्मचारियों के मध्य में याग करते है। तो ब्रह्मचारियों से यही कहते है कि तुम विष्णु बनो। हृदय में अग्न्याधान करो। मानो देखो, ब्रह्मचरिष्यामि बन करके अपने हृदय स्थल में ब्रह्मयाग का वाहन करता है, अपने में रत हो जाता है। तो मेरे प्यारे! देखो, ब्रह्मचारी अपनी इंद्रियों को संकल्पवादी बना करके अपने हृदय में ज्ञान रुपी अग्नि को प्रदीप्त करते है। जब ब्रह्मचारी अध्ययन करता है तो ब्रह्मवर्चोसि का पालन करता रहता है। जिससे उसकी

मानवीयता महानता में परिणत हो जाती है।

विष्णु याग

तो मानो देखो, ये वशिष्ठ मुनि महाराज ने अपना मन्तव्य दिया। वे माता अरुन्धती से बोले कि हे माता हम जानना चाहते हैं कि ये विष्णु क्या है? तो मुनिवरो देखो, माता अरुन्धती कहती है कि एक समय मैं अपने पूज्यपाद पिता और गुरु आचार्य के समीप विद्यमान थी। वे दोनों विष्णु की चर्चा करते रहते थे तो उन्होंने कहा कि ये जो विष्णु है यह याग है। यह विष्णु याग है। मानो देखो, अन्तर्हृदय में जब विद्यमान करके हम परमपिता परमात्मा विष्णु की पगडंडी के पथिक बनते है तो मानो देखो, हम विष्णु को प्राप्त कर लेते हैं। मानो वही विष्णु ब्रह्मः।

आत्म याग

तो मानो देखो, एक समय भ्रमण करते हुए वह अपने आचार्य के समीप मानो देखो, ऋषिमुनि एक समय विष्णुयाग में, भयंकर वनों में तत्पर हो रहे थे और उच्चारण कर रहे थे कि विष्णु क्या है? तो मानो देखो, उन्होंने भी यह वर्णन किया कि विष्णु नाम आत्मा का हैं। जब चिंतन करने वाला आत्मयाग करता है। आत्मयाग करता हुआ वह विष्णु को प्राप्त होता है। मानो देखो, आत्मयाग कैसे होता है। आत्मा को जानना प्राण की प्रतिभा में रत करना है। जैसे प्राण अपने में गति कर रहा है। इसी प्रकार गति प्राण सखा को जानना है। ये प्राण ही तो मानो देखो, हमारे इस मानवीय जीवन में पवित्रता को प्राप्त कर रहे है। प्राण के संयम करने वाला प्राणी मानो देखो, एकोकी स्थली में अंग-अंग में प्राणों का प्रादुर्भाव स्थापित करने लगता है। मानो इसी प्रकार यह आत्मा विष्णु है। विष्णु एक समय मानो देखो, आत्मा ज्ञान के सागर में प्रवेश कर जाता है। मानो चित के मण्डल से उपरामता को प्राप्त हो जाता है तो ये विष्णु बन करके मानो अपने में विष्णु वृत्तिम बन जाता है। तो ये विष्णुयागम् विष्णु याग कहलाता है।

अक्षय क्षीर सागर वासी विष्णु

मेरे प्यारे! देखो, विष्णु आत्मा, आत्मा विष्णु ये मैंने बहुत पुरातनकाल में निर्णय कराया। एक समय बेटा! लोकोक्ति देते हुए कहा है कि विष्णु तो अक्षय क्षीर सागर में रहता है। तो यह जो आत्मा है यह जब ज्ञान के सागर में प्रवेश कर जाता है ज्ञान के आँगन में रत हो जाता है तो मेरे प्यारे! देखो, यह आत्मा ब्रह्मा विष्णुः जब यह विष्णु अक्षय क्षीर सागर में विश्राम करने लगता है। तो बेटा! देखो, उस समय नारद अपनी वीणा को ले करके इसके समीप आ जाते है और गंर्ध्व गान गाने लगता है। मेरे प्यारे! देखो, ये शेषनाग की शैया पर विराजमान हो जाते हैं। शेषनाग की शैया पर विराजमान होकर के मेरे पुत्रो! उस समय लक्ष्मी चरणों पर ओत-प्रोत हो जाती है। मेरे प्यारे! इसका लाकोक्ति हमारे आचार्यों ने बहुत पुरातनकाल में वर्णन किया।

वैदिक साहित्य यह कहता रहता है, आभा में रत करता रहता है। मेरे पुत्रो! देखो, यह अक्षय क्षीर सागर क्या है? हमारे यहाँ अक्षय कहते हैं जिसका नाश नहीं होता, जिसका विनाश नहीं होता। मानो देखो, वह अक्षय कहलाता है। जिसका मंगलं वृत्ति नहीं हो पाता तो अक्षय क्षीर सागर कहते है ज्ञान के सागर को। जहाँ ज्ञान ही ज्ञान दृष्टिपात होता है। जहाँ विवेकी प्राणी बनकर के हर प्रेरणा का सूत्र बना देता है प्रत्येक वस्तु को।

ज्ञान प्रदाता वृक्ष

तो मेरे प्यारे! वृक्ष के नीचे विद्यमान होकर है प्राणी विचारता रहता है कि मैं अक्षय क्षीर सागर में, मैं ज्ञान के क्षीर सागर में विद्यमान हूँ। वृक्ष से हमें क्या ज्ञान प्राप्त होता है? बेटा! वृक्ष से मानो देखो, ज्ञानी जन विचारते हैं, वृक्ष के नीचे विद्यमान होकर के ये वृक्ष मानो देखो, ये छाव देता है, साया देता है। ये दूसरों की रक्षा करता रहता

है ये वृक्ष मानो देखो, अमृत को बहाता रहता है। इसीलिए वृक्ष के नीचे विद्यमान हो करके इस प्रकार वह ज्ञान है। मानो उसकी प्रत्येक वस्तु ज्ञान के सागर में है। मानो पत्तियाँ ज्ञान दे रही है। उसकी शाखाएँ ज्ञान दे रही है। मानो देखो, उसका स्थिर रहना भी ज्ञान दे रहा है कि मानव को स्थिर रह करकेमानो अपनी आभा में रत होना है हमें वृक्ष की भांति अपने जीवन को बनाना हैं। हम वृक्ष के समान दूसरों की रक्षा करें।

मेरे प्यारे! देखो, प्रत्येक वस्तु के विनाश के न होने को दृष्टिपात करता रहता है कि आज मानो जल है इसका भी मानो विनाश नहीं होता। अग्नि है इसका भी मानो विनाश नहीं होता इसीलिए जब वस्तु का विनाश नहीं होता, जब कोई भी वस्तु विनाशता को प्राप्त नहीं होती तो मानो देखो, सदैव ज्ञान ही ज्ञान मुझे दृष्टिपात आ रहा है। जब इस प्रकार अक्षय क्षीर सागर में देखो, वह विष्णु विद्यमान होता है, यह आत्मा विद्यमान होता है तो मेरे प्यारे! देखो, वह नारद अपनी वीणा को लेकर के अक्षय क्षीर सागर में मानो देखो, आत्मा के समीप आता है।

नारद का स्वरूप

मेरे पुत्रो! देखो, यह नारद कौन है? यह नारद प्रकृति का सूक्ष्मतम तंतु माना गया है। मानो नारद नाम वैदिक साहित्य में बेंटा! मानो देखो, मन को कहा गया है। ये मन अपनी वीणा को लेकर के, ये वीणा क्या है? चंचलता। मानो ये मन बड़ा चंचल है और ये मन जब चंचल रहता है तो मन के ऊपर संयम किया जाता है। तो ये मन बेटा! देखो, ज्ञान ही ज्ञान विचारने लगता है। तो मानो उसके अक्षय क्षीर सागर में ये मन अपनी चंचलता रुपी वीणा को त्याग करके बेटा! वह योगी के समीप विद्यमान हो जाता है। मेरे प्यारे! वह चंचलता को त्याग देता है और जब वह चंचलता को त्याग करके अग्रणीय बनता है तो वह चंचलतां आगामं ब्रह्मेः क्योंकि मन के द्वार से जब चंचलता चली जाती है तो वह प्राण के सूत्र में अपने को पिरो देता है। तो बेटा! उसकी चंचलता का विनाश हो जाता है और जहाँ चंचलता चली जाती है तो वह प्राण के सूत्र में अपने को पिरो देता है।

मन

तो बेटा! उसकी चंचलता का विनाश हो जाता है और जहाँ चंचलता गयी वहाँ मुनिवरो! देखो, सौम्यता आ जाती है। विशिष्टता आ जाती है तो उसका नामोकरण बेटा! विष्णु कहा गया है। मेरे प्यारे! देखो, ये नारद मन है। जब प्रकृति के बेटा! देखो, पंच तत्वों का मन्थन किया गया तो उसके मन्थन के पश्चात एक धारा का जन्म हुआ था जिसका नाम बेटा! मन है। जब अकेला देखो, रूखा मन रह गया तो मुनिवरो! देखो, प्राण से इसने अपना सम्पर्क किया। मानो गति से मिलान किया। गति से मिलान करते ही इसमें चंचलता का प्रादुर्भाव हो गया। तो बेटा! ये चंचलता रूपी वीणा को त्यागकर के ये नारद आत्मा विष्णु में समाहित हो जाता है। मेरे प्यारे! कैसे मन की प्रभु का जब ज्ञानां ब्रह्माः जब ज्ञान हो गया तो मेरी चंचलता समाप्त हो गई।

बुद्धि

मेरे प्यारे! देखो, गन्धर्वः कौन है? हमारे यहाँ गन्धर्व के पर्यायवाची शब्द तो बहुत है। परन्तु यहाँ गन्धर्व नाम बेटा! बुद्धि का है जो बुद्धि बेटा! मेधा बनकर के प्रज्ञावी बन करके ऋतम्बरा बनकर के अपने में रत हो रही थी। जो अब तक प्रकृति के सूक्ष्म-सूक्ष्म तन्त्वों को जानने के लिए तत्पर हो रही थी। तो मानो देखो, इस बुद्धि का नाम भिन्न-भिन्न रुपों में परिणत किया गया है। बेटा! बुद्धि हमारे यहाँ गन्धर्व को कहते है। यह गन्धर्व गान गाने लगता है प्रभु का। तो मानो बेटा! ये बुद्धि मन से परे कहलाती है। ये बुद्धि ही तो मेरे प्यारे! मेधावी बन जाती है और मेधावी बन करके ये नाना प्रकार के लोक-लोकान्तरों ब्रह्माण्ड में अपने को रत करा देती है और ब्रह्माण्ड इसमें रत होने लगता है। परन्तु मेधा और ऋतम्बरा ये सर्वत्र ब्रह्माण्ड को जानकर के मौन हो जाती है। उसे ऋतम्बरा कहते हैं।

तप का महत्व

बेटा! देखो, ऋतम्बरा और प्रज्ञा उसे कहते हैं, जहाँ ये प्रज्ञां ब्रह्मवाचोः जहाँ ये प्रज्ञा हो जाती है जहाँ इसके अंतर्हृदय में ज्ञान मानो देखो, एक वायु की भांति प्रवाह से गति कर रहा है। मानो देखो, उस ज्ञान को अपने में ये धारणा कर लेती है। मानो देखो, बुद्धि, मेधा, ऋतम्बरा, प्रज्ञाः में रत हो करके देखो, प्रभु का ध्यान करने लगता है। ये भी प्रभु है और प्रत्येक वस्तु भी प्रभु में है। प्रत्येक वस्तु मानो देखो, प्रभु का आयतन बनी हुई है इस प्रकार जब अन्वेषण होने लगता है तो बेटा! वह गन्धर्व मानो जैसे गन्धर्व सौरमण्डलों का अंतिम सूत्र कहलाता है इसी प्रकार मानव के सुचिंतन करने का ये मेधा अंतिम सूत्र कहलाती है। मानो देखो, ये ऋतम्बरा, प्रज्ञावी बनकर के, मौन होकर के प्रभु का गुणगान गाने लगता है। प्रत्येक वस्तु में प्रभु का आयतन स्वीकार करता है।

शेषनाग का स्वरूप

तो मानो देखो, इस प्रकार अग्रणीय बनकर बेटा! देखो, कहाँ, शम्भो ये शेषनाग के मानो देखो, आसन पर विद्यमान है। बेटा! शेषनाग क्या हैं? मैंने कई काल में तुम्हें वर्णन कराया। शेषनाग हमारे यहाँ मानो देखो, उसे कहते है जहाँ ये विष्णु विद्यमान रहता है। जिसके ऊपर ये विश्राम कर रहा है। तो मेरे प्यारे! देखो, ये पाँचों पफणों वाला शेषनाग कहलाता है। उसके पाँच पफण है बेटा! देखो, वह प्रत्येक पफणों में अपने में विशेषता है। मेरे प्यारे! देखो, पफण क्या है? मेरे प्यारे! देखो, ''पफणं ब्रह्मेः अस्सुतां देवोः ब्रह्माः वाचाः''। मेरे प्यारे! मानो देखो, काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह इत्यादियों वाला जो इनको समेट करके इसके ऊपर विश्राम करता है। वह शेषनाग को अपनी शैया बना लेता है। तो मेरे प्यारे! देखो, काम आता है तो मृत्यु का क्रियाकलाप कर देता है। मृत्यु में रत करा देता है। मेरे प्यारे! क्रोध आता है, तो वह भी मृत्यु में रत कर देता है। इसी प्रकार मद, लोभ और मोह देखो, जब तक ये सामान्यता में बने रहते है तो उत्पति का कारण बनते है समाज में महानता को लाना प्रारम्भ कर देते हैं। परन्तु जब इसमें विशेष आभा नहीं रह पाती तो ये अपने में रत होने लगते है।

तो मेरे प्यारे! देखो, यही शेषनाग मानो देखो, मृत्यु का क्रियाकलाप कर देता है। अति का नाम ही अपराध है और मुनिवरो! देखो, सामान्यता में वही पुष्णाद् बना देता है। परिणाम क्या? वेद का आचार्य कहता है विष्णुं ब्रह्माः मेरे प्यारे! देखो, वह जो पाँच पफणों वाला शेषनाग है। उसको हम दमन करके हम ज्ञान के द्वारा, वेद के द्वारा उसको दमन करें बेटा! उसको सामान्यता में अपने में धारण करें। बेटा! सामान्यता को भी त्याग कर के ही योगी ऊँचा बन जाता है।

धर्म की पत्नी लक्ष्मी

तो बेटा! मानो देखो, शेषनाग की शैया पर कौन विद्यमान है वह ब्रह्माः ब्रहे वह विष्णु है वह आत्मा है। मेरे प्यारे! देखो, शेषनाग से भी जब वह ''विर्धो अश्वात्'' होता है तो बेटा! देखो, लक्ष्मी चरणों में ओत-प्रोत प्राप्त हो जाती है। जब मुनिवरो! देखो, वह शेषनाग को अपने नीचे दबा लेता है जो लक्ष्मी संसार को लुभाने वाली है। बेटा! देखो यही लक्ष्मी हमें प्राप्त हो जाती है। ये चरणों की वन्दना करने लगती है। ये चरणों में ओत-प्रोत हो जाती है। मेरे प्यारे! जहाँ लक्ष्मी रहती है धर्म होता है और जहाँ धर्म नहीं होता वहाँ से लक्ष्मी अपना उत्थान कर जाती है।

लोकोक्ति

तो मेरे प्यारे! मैंने बहुत पुरातन काल में एक लोकोक्ति प्रकट करते हुए तुम्हें कहा था कि एक राजा थे। मानो देखो, राजा अपने यहाँ आनन्दवत् में रहते थे। मेरे प्यारे! देखो, एक समय भगवान विष्णु और लक्ष्मी दोनों का विवाद हो गया। जब दोनों का भयंकर विवाद हुआ तो विष्णु बोले कि हे लक्ष्मी! जो मेरे प्रिय भक्त होते हैं वे

मानो तुम्हें नहीं जान पाते। मेरे प्यारे! लक्ष्मी बोली कि जो तुम्हारे भी प्रिय भक्त होते हैं। वहाँ मेरा वास हो जाता है। वहाँ विष्णु का कोई महत्व नहीं रह पाता।

मेरे प्यारे! दोनों में विवाद हुआ तो लक्ष्मी बोली कि महाराज! परीक्षा हो जाये। तो मेरे प्यारे! देखो, भगवान विष्णु भ्रमण करते हुए राजा के समीप पहुँचे। राजा ने उनका स्वागत किया। राजा ने कहा प्रभु! हमें तो आवश्यकता थी कि एक सन्यासी, महापुरुष मानो हमारे आश्रम में रहे। तो उन्होंने कहा-भगवन्! आप यहाँ वास कीजिए। विष्णु बोले कि मेरे लिए एक स्थान का निर्माण होना चाहिए। मेरे पुत्रो! देखो, राजा को क्या देरी थी। देखो, राजा ने एक स्थान का निर्माण किया उस आसन पर मानो देखो, भगवान विष्णु साधु महात्मा के रुप में बेटा! वहाँ विद्यमान हो गए। जब विद्यमान हो गए तो राजा पत्नी के सहित मानो नित्यप्रति बेटा! उनके यहाँ सत्संग होता, विचार होता, वेद का विचार होता, मंत्रों के ऊपर अध्ययन होता रहा।

तो मेरे प्यारे! देखो, राजा मोहित हो गया। राजलक्ष्मी अति प्रसन्नता में परिणत हो गई। मेरे प्यारे! राज्य में हर प्रकार की शांति की स्थापना हो गई। तो मेरे प्यारे! देखो, कुछ समय के पश्चात लक्ष्मी राजा के यहाँ भिक्षु का रुप बनाकर के राजा से बोली हे राजन्! भिक्षां देहि, मेरे प्यारे! राजा ने कहा-माता है, मानो क्षुधा से पीड़ित है। वे मुनिवरो! देखो, नाना प्रकार के पदार्थों को लेकर के देवी के समीप आये, उन्होंने ;माता नेद्ध अपनी झोली से देखो, पाँच-पाँच स्वर्ण के निकासे निकाल कर दिये और कहा राजन्! इनमें ;स्वर्ण पात्रद्ध भोजन कर दीजिये उन्होंने विचारा ये कैसी भिखारन है। मानो देखो, ये कैसी भिक्षुक है? जिसके द्वारा मानो स्वर्ण रहता हो, स्वर्ण के पात्रों में भोजन करने वाली हो। उन्होंने कहा-प्रभु ब्रह्मे वाचप्प्रही लोकाम् हे माता! भोजनं मम। ब्रहे उन्होंने भोजन किया और वह बोली कि ये जो पात्र है। इसको मेरे से पृथक् कर दीजिए। मैं पात्र को नहीं चाहती। पात्र में एक समय भोजन कर लेती, द्वितीय नहीं कर पाती। तो मेरे प्यारे! राजा ने विचारा यह भिक्षुक माता तो बड़ी आश्चर्यजनक है। राजा ने विचारा कि यह कुछ समय तक रह जाए, तो मैं स्वर्णपति बन जाऊँगा।

तो बेटा! उन स्वर्ण के पात्रों को गृह में प्रवेश कर दिए। मुनिवरो! देखो, वह नित्यप्रति भोजन करती और पाँच-पाँच स्वर्ण के निकासे दे देती। तो मेरे प्यारे! जब लक्ष्मी ने विचार लिया कि ये धर्म से विमुख हो गया है। मानो विष्णु से विमुख हो गया है। तो उस समय राजा से कहा हे राजन्! अब मैं यहाँ से प्रस्थान कर रही हूँ उन्होंने कहा-माता! तुम कहाँ जाती हो? मेरे यहाँ वास करो। उन्होंने कहा-मेरी कुछ प्रतिज्ञाएँ है। उन्होंने कहा-माता! क्या प्रतिज्ञा है? कि मैं उस काल में रह सकूँगी जब ये जो तुम्हारी वाटिका में महात्मा रहते है इसका यहाँ से प्रस्थान हो जाए। मानो यहाँ से इसका गमन हो जाए।

तो मेरे पुत्रो! देखो, उन्होंने कहा-माता! वे तो मेरे पूज्य गुरु है, मुझे शिक्षा देते हैं मै ऐसा नहीं कर सकता। उन्होंने कहा-तो मेरा यहाँ वास नहीं हो सकता मै यहाँ वास नहीं कर सकती। उन्होंने कहा-माता! तुम युक्ति उच्चारण करो। उन्होंने कहा-तुम इनके सम्मुख न जाओ, न भोजन पहुँचाओ। कुछ समय पश्चात ये क्षुधा में पीड़ित होकर स्वतः प्रस्थान कर जाएँगें।

मेरे प्यारे! देखो, राजा ने लक्ष्मी के इस वाक् को स्वीकार कर लिया। देखो, दोनों ने वहाँ जाना समाप्त कर दिया। कुछ समय के पश्चात बेटा! महात्मा विष्णु ने वहाँ से गमन किया। लक्ष्मी स्वर्ण पात्र देती रही।

बेटा! कुछ समय के पश्चात लक्ष्मी ने कहा-राजन्! अब मुझे आज्ञा दीजिए। मैं यहाँ से अब प्रस्थान कर रही हूँ, राजा बोला मातेश्वरी! तुम कहाँ जाती हो? मैंने तो महात्मा को भी दूरी कर दिया। अब तुम मानो देखो, मुझे त्याग करके जा रही हो। ये तो मेरे लिए श्राप हो जाएगा। उन्होंने कहा-नहीं, राजन्! अब मैं नहीं रह सकूँगी। जहाँ

मेरे पति विष्णु रहते थे विष्णु जब तुमने मेरे पति को ठुकरा दिया तो जहाँ पति रहता है वहाँ पत्नी रहती है। तो हे राजन्! मानो देखो, तुमने मेरे स्वामी को भोजन नहीं दिया। मानो देखो, वह धर्म है वे महान् विष्णु है। वे मेरे पति है। तो मेरे प्यारे! देखो, ये जो पतिं ब्रह्माः ये जो लक्ष्मी है ये धर्म की पत्नी कहलाती है इसका यथार्थ उपयोग होना चाहिए।

तो मेरे प्यारे! देखो, लक्ष्मी ने वहाँ से गमन किया। देखो, वे जो स्वर्ण पात्र थे वह देखो, पार्थिव तत्वों के बन गए। मानो वे स्वर्ण के न रहे। मेरे प्यारे! देखो, राजा ने कहा-ओह, मैंने कितना बड़ा पाप किया है। मैंने महात्मा को अपने से दूरी कर दिया मानो मेरा राष्ट्र तो नष्ट-भ्रष्ट हो गया है।

लक्ष्मी का वास

तो मेरे प्यारे! विचार विनिमय में क्या? ये जो है लक्ष्मी मानो देखो, जो आत्मवेत्ता होता है मानो देखो, लक्ष्मी उनके चरणों में ओत-प्रोत हो जाती है। लक्ष्मीं ब्रह्मः वाचोः और यदि लक्ष्मीं ब्रह्मे व्रताः मेरे प्यारे! जो लक्ष्मी का पूजन नहीं करता। पूजन का अभिप्राय ये है कि लक्ष्मी का सदुपयोग होना चाहिये। जो लक्ष्मी का देखो, सदुपयोग करता है उसके गृह में देवी वास करती है मानो देखो, सदुपयोग क्या है? देवताओं का याग करना, मानो देखो, अपने को शुभ क्रियाकलापों में लगाना। इसका दुरूपयोग जब करता है प्राणी, तो मानो देखो, उसका विनाश हो जाता है। धर्म जब नहीं रहता। तो तभी यह मानो देखो, लक्ष्मी का दुरुपयोग प्रारम्भ करता है।

तो मुनिवरो! देखो, जो अक्षय क्षीर सागर में काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह इत्यादियों को नीचे दबाकर रखता है योगाभ्यास के द्वारा प्राण सूत्र के द्वारा तो बेटा! ये लक्ष्मी मानो देखो, उसके चरणों में ओत-प्रोत हो जाती है। मेरे प्यारे! ये सम्पदा बनकर के जीवन की धारा बनकर के ये मानवीयता को ऊँचा बना देती है।

यौगिकता में विष्णु

तो मेरे प्यारे! विचार-विनिमय में क्या? महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज और माता अरुन्धती ने विष्णु शब्द की विवेचना की कि विष्णु वह कहलाता है जो अधिपति कहलाता है। जो ''धर्मज्ञं ब्रह्मवाचो'' कहलाता है। तो मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने ये कागभुषुण्डी जी ने स्वीकार किया और आश्चर्यचकित होकर के ऋषिवर को ये उच्चारण कर रहे थे कि मैंने ये अध्ययन किया ऋषि मुनियों के द्वार पर जा करके कि मानव को यौगिकता में ही विष्णु प्राप्त होता है और वही विष्णु है जो अक्षय क्षीर सागर में रहता हैऔर आनन्दवत् को प्राप्त कराता है।

तो मेरे प्यारे! विचार-विनिमय में क्या? यज्ञोमयी विष्णु वही याग कहलाता है। जो मुनिवरो! देखो, यजमान अपनी यज्ञशाला में याग करता हुआ अपने में विष्णु की उपासना करके बेटा! सागर से पार हो जाता है। ये आज का वाक् अब हमारा समाप्त होने जा रहा है। बेटा! वेद का वाक् कहता है कि धर्म ही मानव का रक्षक है। वही विष्णु है। यज्ञोमयी विष्णु वह याग बनकर के धर्मज्ञ कहलाता है। ये है बेटा! आज का वाक् अब समय मिलेगा। मैं शेष चर्चाएँ तुम्हें कल प्रकट करुँगा अब वेदों का पठन-पाठन ओ३म् ब्रह्म भूरेवं आपः रथं माहं आप्यां रेवाः ओ३म् रथ प्राः वसुः आभ्यां देवाः। ओ३म् सर्वं भद्राः मां रथा तनु गायन्त्वाः। आनन्द भव 17.10.1985 सी-3/9, मॉडल टाउन।

६ तपस्या में जीवन 1985 10 19

जीते रहो, देखो, मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद-मंत्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा। आज हमने पूर्व से, जिन वेद मंत्रो का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता हैं, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन किया जाता है अथवा उसके गुणों का गुणवादन किया जाता है, क्योंकि वह परमपिता परमात्मा सर्वज्ञ है। संसार की प्रत्येक तरंगों में, उस परमपिता परमात्मा की चेतनता प्रायः हमें दृष्टिपात आती रहती है और अपने में चिन्तन करते रहते हैं कि परमपिता परमात्मा, जिसका तरंगों में ही आयतन हमें दृष्टिपात आता रहता है, वह परमपिता परमात्मा महान और पवित्र हैं। प्रत्येक अणु की रचना में वह रचनाकार है और परमाणु उसका आयतन माना गया है।

परमाणु में ब्रह्माण्ड दर्शन

जब हम विज्ञान के आंगन में प्रवेश करते हैं, तो विज्ञानवेत्ता को यह प्रतीत होता है, कि एक परमाणु के गर्भ में, अणु के गर्भ में संसार की बहुत सी सामग्री उसमें निहित होती है, क्योंकि उसी सामग्री का वैज्ञानिक अपने में समन्वय करता रहता है अथवा मिलान करता रहता है और उसके सम्मिलन से नाना प्रकार के यंत्रों का निर्माण भी कर लेता है। तो इसीलिए वह परमाणुवाद, अणुवाद ही उस परब्रह्म परमात्मा का आयतन माना गया है, वह उसमें निहित रहता है। हमारे यहाँ परम्परा से अतीत के वैज्ञानिकों ने अणु के रुप में, परमाणु के रुप में ब्रह्माण्ड को दृष्टिपात किया।

साधना का क्षेत्र

तो मुनिवरो! देखो, योगीजन साधना के रुप में प्रवेश करके उस तक जाने का प्रयास करते हैं परन्तु वैज्ञानिकजन, भौतिक विज्ञानवेत्ता एक-एक अणु और एक-एक धारा को जानने के पश्चात उस धारा में रत हो करके उस अणु का परमाणु का विभाजन करते हैं तो उसमें यह संसार, यह ब्रह्माण्ड दृष्टिपात आता है। जिन वैज्ञानिकों ने साधनाएँ की हैं अथवा जिन्होंने इस संसार को दृष्टिपात किया है उनकी अपेक्षा जिन ऋषि मुनियों ने अपने मन और प्राण के माध्यम से इस संसार को दृष्टिपात किया है वह एक अनुपम माना गया है। इसी प्रकार मानव जब साधना के में क्षेत्र में प्रवेश करता है तो ये प्रवृत्तियाँ बिखर जाती हैं। प्रवृत्तियों में जब भिन्न-भिन्न प्रकार के एक दूसरे में आक्रमण होते रहते हैं, तो मानव की प्रवृत्ति में अशुद्धवाद आ जाता है।

लंका विजयोपरान्त अयोध्या में सभा

तो मुनिवरो! देखो, मैं तुम्हें त्रेता के काल में ले जाना चाहता हूँ जहाँ साहित्यिक और उनके विचार मुनिवरो! देखो, जब भगवान राम लंका को विजय करके अपनी अयोध्या में आ पहुँचे, तो भरत इत्यादि ने उनका बड़ा स्वागत किया, बड़ी विशाल राज सभा हुई। राजा इत्यादि सभी विद्यमान थे, जिसमें महाराजा शिव, महाराजा इन्द्र और भी राजा जितने पृथ्वी पर थे सबकी एक सभा अयोध्या में हुई थी। राम को एक उचित स्थान प्राप्त किया गया। ऋषि मुनि भी सभी विद्यमान थे। तो माता अरुन्धती, वशिष्ठ महर्षि कागभुषुन्डी जी और लोमश इत्यादियों का भी एक समूह उस राज्य सभा में विराजमान हुआ। भगवान राम एक स्थली पर विद्यमान थे। महाराज शिव को उन्होंने उचित और ऊर्ध्वा में आसन प्रदान किया। एक स्थली पर माता अरुन्धती और वशिष्ठ मुनि को उन्हांने ऊर्ध्वा में आसन प्रदान किया और राम उनके मध्य में विद्यमान हो गये। भरत चरण पादुका के समीप विद्यमान है।

रजोगुण की धारा में राष्ट्र विजय

तो मुनिवरो! देखो, विचार होने लगा, भगवान शिव बोले, राम! अब तुम अयोध्या के अधिराज बनो। भगवान राम ने एक वाक् कहा कि प्रभु! इस अयोध्या के राष्ट्र को अभी मैं उचित नहीं जान रहा हूँ क्योंकि जब तक मेरी जो प्रवृत्तियाँ हैं, वह रजोगुणा से सात्विक रुपों में नहीं आ सकेंगी, तब तक मैं इस अयोध्या के राष्ट्र का अधिकारी नहीं हूँ। भगवान शिव बोले कि महाराज क्या तुम्हारी प्रवृत्तियाँ रजोगुणी है। उन्होंने कहा अभी मैं बहुत विशाल संग्राम को विजय करके आया हूँ। क्योंकि मैने वहाँ बड़ा संघर्ष किया है। मिथ्या भी उच्चारण किया है, क्योंकि जो राजा दूसरे प्राणियों को या राष्ट्र को प्राप्त करना चाहता है तो उसे भिन्न-भिन्न प्रकार की मानवीय धाराओं को अपनाना अनिवार्य होता है। यदि अपनायेगा नहीं, तो विज्ञान अपने में सार्थक नहीं बनेगा और राष्ट्र को विजय नहीं कर सकेगा।

मैंने यह प्रथम ही विचार लिया था कि राजा से मेरा संग्राम है और ऐसे विशाल राजा से जिसके राष्ट्र में सूर्य उदय और अस्त नहीं होता था। क्योंकि पातालपुरी में राष्ट्र है, कोई ऐसी स्थली पृथ्वी मंडल पर नहीं थी जहाँ रावण का राज्य न हो, परन्तु मिथ्या से अपने अन्तःकरण में मैं यह भावना जान गया था कि यह मिथ्या है। उसके पश्चात भी उसका प्रयोग किया गया, क्योंकि रजोगुण की धारा में ही राष्ट्र को विजय किया जाता है। तो इसलिए कुछ समय के लिए मुझे आज्ञा दो। मैंने इसीलिए ही सभा का आयोजन किया है कि मैं कुछ समय के लिए तपस्या करने के लिए जाऊँगा। मेरे ये दोनों पूज्य महात्मा वशिष्ठ और माता अरुन्धती विद्यमान हैं, मेरा बाल्यकाल भी इनके चरणों में रहा है और मेरी तपस्या का काल भी इन्हीं के चरणों में रहेगा।

महाराजा शिव का आग्रह

मेरे पुत्रो! देखो, महाराजा शिव इस वाक् को अपनी तर्क संगति से नष्ट नहीं कर सके। उन्होंने कहा-कि राम! सात्विक विचारों से तो तुम्हारा वाक् बहुत प्रिय है, परन्तु इस राष्ट्र को, अयोध्या को कौन सार्थक बना सकेगा, कौन इसकी नियमावली निर्धारित करेगा? उन्होंने कहा मेरे विधाता भरत हैं। जैसे पिताजी के निधन होने, पर उसके पश्चात अयोध्या का राष्ट्र चल रहा है, आज भी वह उसी प्रकार अपने में गतिशील है।

अयोध्या का निर्माण

राम तपस्वी हैं, मानो सखा हैं राष्ट्र प्रजा के प्रिय हैं और अयोध्या के प्रत्येक प्राणी को उचित स्थान देने वाले हैं क्योंकि अयोध्या का निर्माण यह तो भगवन्! आप सभी को प्रतीत है 'रामं ब्रहे वाच ब्रहू सम्भो' इस अयोध्या का जो निर्माण है वह भगवान मनु ने किसी काल में किया था। भगवान मनु के काल को बहुत पुरातनकाल हो गया है। भगवान मनु ने अयोध्यापुरी का निर्माण किया, जब समुद्रतट भी अयोध्या से कुछ ही दूरी पर था। आज समुद्र बहुत दूर चला गया है यहाँ से। भगवान मनु ने यहीं अपनी देखो, एक नौका पर विद्यमान हो करके तप किया था। तपस्या करने के पश्चात प्रजा को अधिकार की पुकार न देकर के कर्त्तव्यवाद के ऊपर बल दे करके भगवान राम ने देखो, जैसे मानव का शरीर है, किसी काल में प्रभु ने मानव के शरीर को निर्माणित किया होगा। तो यह अष्टचक्र और नौ द्वारों वाली पुरी है, उन्होंने इस पुरी के तुल्य ही इस अयोध्या का निर्माण किया और अष्टचक्र नौ द्वार। इस अयोध्या के नौ द्वार हैं, आठ चक्र हैं। अष्टचक्र नौ द्वारों वाली यह नगरी है। यह मानव का शरीर भी अयोध्या के ही रुप में है और भगवान मनु ने इसके आश्रित इसका चिन्तन करते हुए नगरी का निर्माण किया और भगवान मनु ने यहाँ सबसे प्रथम राज किया था।

भगवान मनु के साढ़े बारह हजार वंशजों का राष्ट्र इस अयोध्या में रहा। उसके पश्चात यहाँ और भी नाना

मनुवंश के राजा हुए हैं। परन्तु आज इसके साहित्य में न जा करके मैं यह प्रार्थना कर रहा हूँ कि जैसे इस राष्ट्र इस नगरी का क्रियाकलाप परम्परागतों से चला आ रहा है इसी प्रकार आज भी यह क्रियाकलाप चलता रहेगा।

भगवान इन्द्र का आग्रह

तो मुनिवरो! देखो, जब राम का यह वाक् समाप्त हुआ, तो इतने में भगवान इन्द्र ने कहा हे राम! वाक् तो तुम्हारा यथार्थ है कि तपस्या करनी चाहिए, परन्तु यदि तुम राष्ट्र को भोगते समय तपस्वी बन जाओ तो यह अयोध्या का राष्ट्र सुचारु रुप से चल सकता है और इन्द्र ने कहा कि मैं भी यही चाहता हूँ तुम्हारी अयोध्या उसी काल में सुशोभित होगी।

आत्मबल का प्रभाव

भगवान राम बोले-कि नहीं, बिना तपस्या के राजा को राष्ट्र का कोई अधिकार नहीं होता है। क्योंकि राजा यदि दूसरों के श्रृंगार को ही हनन करता रहेगा तो वह अपने में कुछ नहीं कर पायेगा, तो वह राष्ट्र या वह प्रजा महान् कदापि नहीं बना करती। इस पृथ्वी का राष्ट्र मेरे समीप आ जाए परन्तु यदि मेरे द्वारा आत्मबल नहीं है, तो यह सर्वत्र संसार समाप्त हो जाते हैं। शारीरिक बल भी तभी प्रियता में आता है जब मानव के द्वारा आत्मिकबल होता है। आत्मा का बल, शारीरिक बल और एक ब्रह्म वाचस्प्रहे इसमें विद्या का अध्ययन किया जाए तो विद्याबल और सुसज्जित हो जाता है। तो यह जो नाना प्रकार का बल राष्ट्रीयता के द्वारा होता है यह राष्ट्र को ऊँचा बनाता है।

विधाता भरत का आग्रह

परन्तु देखो यह वाक् जब इन्द्र से कहा तो इन्द्र भी शान्त हो गये। मुनिवरो! देखो, इतने में भरत ने कहा कि हे भगवन्! आपको यह प्रतीत है कि मुझे बहुत समय हो गया है, अयोध्या का राष्ट्र मैं जिसको सुचारु रुप से नहीं चला पाया हूँ इसमें पाण्डित्य की इतनी वृद्धि नहीं कर सका जितनी होनी चाहिए। क्षत्रिय अपने में बलिष्ट नहीं हो सका जितना होना चाहिए, जितना हमारे पूर्वजों के काल में रहा है। परन्तु देखो, इसी आभा में, मैं चाहता हूँ कि भगवान आप यहीं तपस्या कीजिए और मुझे जो आज्ञा दोगे मैं उस कार्य को करता रहूँगा। मैं उस क्रियाकलाप में रत रहूँगा।

चित्त के मण्डल में कर्मों की भूमिका

भगवान राम बोले कि हे भ्राता! यह वाक् मेरे विचार में आ नहीं पा रहा है। तुम यहाँ इतने समय तक इस अयोध्या का क्रियाकलाप करते रहे हो, माता-पिता की आज्ञा का पालन कर रहे हो, मेरी आज्ञा का पालन कर रहे हो। इसी प्रकार तुम आगे भी इस क्रियाकलाप को करते चले जाओ। मैं तपस्या के लिए अवश्य जाऊँगा, क्योंकि मैंने बहुत अपने मनोनीत से अपराध किया है। मेरा जो चित्त मण्डल है वह अशुद्ध हो गया है, क्योंकि मैंने रावण से संग्राम किया है तो मुझमें रजोगुण भी आया है, तमोगुण भी आया है। अनिष्ट विचार भी आए हैं, वे विचार मेरे अन्तःकरण में ज्यों के त्यों निहित हो रहे हैं। आज जब तक मैं उन विचारों का प्रतिषोध नहीं कर पाऊँगा, मैं उनको तपस्या के रूपों में आचार्यों की शरण में जाकर के उन्हें सूक्ष्म नहीं बना लूँगा तब तक मेरा चित्त का मण्डल क्योंकि वह कर्म तो मेरे ही साथ जायेंगे। मैंने जो चित्त के मण्डल में अपने कर्मों की भूमिका बनाई है, वह ज्यों की त्यों चित्त के मण्डल में विद्यमान है। ऋषि भी उसी काल में बनते हैं जब चित्त के मंडल में सूक्ष्मवाद आ जाता है, चित्त के मण्डल में कर्म की विचारों की सूक्ष्मता हो जाती है, तो वह अग्रणीय बनता है।

तीन प्रकार के शरीर

तुम्हें यह प्रतीत होगा कि जब बाल्यकाल में पूज्यपाद गुरुदेव के चरणों में विद्यमान हो करके अध्ययन

करता रहा हूँ तो एक समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव के आश्रम में देखो, महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज पधारे थे। वह गाथा अब तक मुझे स्मरण है। तो उन्होंने ब्रह्मचारियों को एक उपदेश दिया था और ब्रह्मचारियों से ये कहा था कि देखो, जब मानव मुक्ति के क्षेत्र के लिए गमन करता या परमात्मा से मिलन के लिए गमन करता है, तो इस आत्मा के तीन प्रकार के शरीर होते हैं। एक शरीर स्थूल कहलाता है, एक सूक्ष्म है और एक कारण कहलाता है। स्थूल शरीर तो त्यागा ही जाता है और जब तक इसके द्वारा चित्त का मण्डल बना रहता है आत्मा के संग तब तक सूक्ष्म शरीर में चित्त के मण्डल की प्रतिभा निहित रहती है। वह शरीरों को प्राप्त होता रहता है, वह संसार में आवागमन की प्रतिभा में निहित रहता है।

सूक्ष्म शरीर

परन्तु देखो, जब तक हम अपने तपस्या के बल से सूक्ष्म शरीर को न जान लें कि यह सूक्ष्म शरीर क्या है? इसमें प्रकृति की पंचतन्मात्रा कहलाती हैं और दस प्राण होते हैं, मन और बुद्धि होती है यह सत्रह आभा वाला, तरंघों वाला सूक्ष्म शरीर कहो या इसको चित्त के मण्डल की प्रतिभा कह सकते हैं। उसमें ज्यों के त्यों चित्त में संस्कार निहित रहते हैं।

मुझे स्मरण है महर्षि याज्ञवल्क्य ने सोमवृत्तिका ऋषि को उद्धृत करते हुए कहा सोम वृत्तिका एक ऋषि हुए हैं जो उद्दालक गोत्र में हुए हैं, उन्होंने एक सौ पिच्यासी वर्ष तक कठोर तप किया था चित्त के मण्डल को जानने के लिए, कि चित्त में कौन-कौन से संस्कार कितने जन्मों के विद्यमान हैं। तो उन्होंने लगभग अठारह सौ जन्मों के संस्कारों को साक्षात्कार दृष्टिपात किया था जो चित्त के मण्डल में निहित थे।

साधना

वह जो चित्त का मण्डल है उसे हमें सूक्ष्म बनाना है और वह कैसे बनाएँगें? वह जब बनेंगे जब हम साधना करेंगे। हम पंचतन्मात्राओं की प्रतिभा को मन बुद्धि के रूप में दृष्टिपात करेंगे और मन,बुद्धि को प्राण सूत्र में पिरो देंगे और प्राण-सूत्र को चेतनामयी जो प्रभु है, जो सर्वत्र जगत का नियंता है, निर्माण करने वाला है जब तक हम उसको अपने में दृष्टिपात नहीं कर सकेंगे, तब तक हम अपने जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों को सूक्ष्म नहीं बना सकेंगे। वह जब सूक्ष्म नहीं बन जाते हैं, तो तपस्या पुनः की जाती है।

कारण शरीर

तपस्या के बल पर उसके पश्चात हम कारण शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। कारण शरीर क्या हैं? कारण शरीर वह है जब मुनिवरो! देखो, चित्त के मण्डल की प्रतिभा सूक्ष्म बन जाती है और सूक्ष्म शरीर चित्त में प्रवेश हो जाता है, चित्त में वह रत हो जाता है, जैसे ही स्थूल से यह सूक्ष्म निकल करके जाता है, ऐसे ही देखो, यह परम ब्रह्माः आपो यह जो वृत्तियाँ हैं, यह जो चित्त का मण्डल है अथवा सूक्ष्म शरीर से जब कारण शरीर निकलता है तो चित्त मण्डल निचले भाग में रह जाता है। तो वही चित्त का मण्डल मम ब्रहे वह परमात्मा के चित्त में बन गया और वह केवल कारण शरीर रह जाता है। ऐसा ऋषि कहते हैं, वेद की प्रतिभा कहती है कि उस समय ज्ञान और प्रयत्न दोनों प्रकार की धारा रह जाती है। दोनों प्रकार की धाराओं का जब तक एकोकीकरण नहीं हो जाता, तब तक मुनिवरो! देखो, जीवात्मा मोक्ष के प्रति, मोक्ष के द्वार पर नहीं जा सकता। ज्ञान और प्रयत्न दोनों का समन्वय होता है तो केवल आत्मा निष्क्रियता में उस परमपिता परमात्मा, ब्रह्माण्ड जिसका आयतन माना गया है, उसमें रत हो जाते हैं।

तो यह वाक् एक समय याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने मेरे पूज्य गुरुदेव के आश्रम में, जब हम बाल्यकाल

में आचार्य के यहाँ अध्ययन करते थे तो यज्ञ के उपरान्त में यह वाक् कहा था। वह मुझे अब तक स्मरण है।

भगवान राम ने जब उस राष्ट्रीय सभा में ऋषियों के वाक्यों को उद्धृत किया तो सब राज्य सभा मौन हो गई। महाराजा शिव ने कहा वाक् तो तुम्हारा यथार्थ है। उन वाक्यों को विचार करते हुए हनुमान जी का उपदेश हुआ। महाराजा हनुमान ने कहा प्रभु! आप तो आत्मा की चर्चा सदैव करते रहते हैं। आत्मज्ञान की चर्चा उन दोनों की विचारधारा में भी रत रहती थी।

देखो, सायंकाल का समय हो गया, रात्रि का काल अपने-अपने कक्षों में अतिथि निमंत्रित किये, विशेष कक्षों में उन्हें निहित किया गया। रात्रि समय में अयोध्या में एक यज्ञशाला थी, यज्ञशाला में एक भवन था, उस भवन में विद्यमान हो करके विचारकों का पुनः विचार विनिमय होने लगा। तो भगवान राम को यह कहा गया कि भगवान्! बाल्यकाल की स्मरणशक्ति आपके समीप है, आप कुछ और हमें उपदेश दीजिये भगवान राम बोले कि भगवन्! यह कैसी वार्ता प्रगट कर रहे हो? शिव से प्रार्थना की गई कि महाराज! रात्रिकाल में आपकी कोई उपदेश मंजरी हो जाए।

महाराजा शिव की चिन्तन धारा

भगवान शिव ने कहा कि मैं कैलाश के आंगन में रहता हूँ और हम विचार विनिमय करते रहते हैं। विज्ञान के सम्बन्ध में भी नाना प्रकार के विज्ञान की धाराओं में रत रहते हैं, उसमें हम सदैव चित्त के मण्डल पर अनेकानेकों समय विचार विनिमय करते रहते हैं। एक समय जब तपस्या में परिणत हुए तो हमारे चित्त के मण्डल में केवल इतनी गति हुई कि चित्त के मण्डल में जब तक मन का मण्डल रहता है, जब तक मन बुद्धि रहते हैं, मन और चित्त का अन्तःकरण का मण्डल रहता है, तब तक चित्त का मण्डल बना ही रहता है और देखो, चित्त के मण्डल का समन्वय आंतरिक चित्त और बाह्यचित्त दोनों चित्तों का चित्रण करने लगते हैं। एक तो मानव के शरीर में नाना जन्म-जन्मान्तरों की स्मरण शक्तियाँ हैं, वह चित्त का मण्डल उसमें निहित रहता है, क्योंकि जब तक मन रहता है प्रकृति का क्षेत्र तन्मात्राओं के रुप में रहता है तब तक यह चित्त का मण्डल बना रहता है। परन्तु देखो, चित्त के मण्डल को जब तक हम अग्रणीय आभा में ले जाते है बाह्यजगत, बाह्यचित्त में ले जाते हैं, तो बाह्यचित्त में जो सूक्ष्म परमाणुवाद का यह जगत है इसमें भी मानव के संस्कार विद्यमान होते हैं। जहाँ मानव के शब्द रहते हैं, शब्दों के साथ में चित्र रहते हैं उनका चित्रण होता रहता है। तो उसको भी बाह्यजगत में चित्त का मण्डल कहते हैं। चित्त के मण्डल का समन्वय प्रभु के ब्रह्माण्ड से होता है। प्रभु का जो ब्रह्माण्ड है वह एक अनूठा चित्त कहलाया गया है। उसमें इस मण्डल से मिलान हो जाता है, तो सूक्ष्म बाह्यजगत उसका सूक्ष्म बन जाता है। यह वाक् जब उन्होंने प्रगट किया तो मुनिवरो! इस सूक्ष्म विचार से, परन्तु ये विचार बड़े गम्भीर और मननीय थे।

परन्तु देखो, इसके उपलक्ष्य में उन्होंने कहा कि मेरे यहाँ कैलाश पर्वत पर एक सेवाभातृ ऋषि महाराज तपस्या करते थे जो भारद्वाजीय गोत्रीय कहलाते थे। एक समय वे अनुसंधान करते-करते चित्त के मण्डल को जानने की दशा में अपने को ले गये। तो ऐसा मुझे प्रतीत है उनके कथनानुसार उन्होंने अपने 22 जन्मों के चित्त के मण्डल को साक्षात्कार किया और साक्षात्कार करके उसके ऊपर तपस्या में परिणत हो गये। तो इसी प्रकार मानव के जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार, संस्कारों की निधि मानव के समीप रहती है। शिव इतना उच्चारण करके मौन हो गये।

मुनिवरो! देखो, रात्रि विश्राम की हो गई, विश्राम में चले गये। प्रातःकाल हुआ अपनी क्रियाओं से सब निवृत्त हो करके यज्ञशाला में याग हुआ और यज्ञशाला में अग्निहोत्र, देवपूजा करने के पश्चात अतिथि गणों ने

अपनी-अपनी स्थलियों को प्रस्थान किया।

चन्दन के समान जीवन में सुगन्धि

मुनिवरो! देखो, भगवान राम ने प्रातःकालीन यज्ञशाला में ही अपने विधाता ब्रहे सम्भूर्वा, उन्होंने भरत जी को अपनी आभा से, अपने आशीर्वाद की प्रतिभा बड़े विधाता के होने के नाते उन्होंने चन्दन का लेपन करके कहा, कि अब तुम इस राष्ट्र को अपने में जैसे चन्दन में सुगन्धि आ रही है और इंगला, पिंगला और सुषुम्णा नाड़ी के मध्य में इसका तिलक किया जाता है इसी प्रकार जैसे पिंगला सुषुम्णा के बिना मानव के शरीर की स्मरणशक्ति नहीं रहती है, इनके रहते हुए स्मरणशक्ति जागरुक रहती है और देखो, जैसे चन्दन में सुगन्ध आती है, सुगन्धियों का समूह है, ऐसे ही तुम्हारे जीवन में सुगन्धि हो, राष्ट्र में सुगन्धि हो और राष्ट्र व जीवन में सुगन्धि ही तुम्हारे अयोध्या राष्ट्र को ऊँचा बनाएँगी। राम ने प्रातःकालीन तिलक करने के पश्चात, महात्मा वशिष्ठ मुनि महाराज, माता अरुन्धती दोनों के चरणों में राम ने वन्दना करके, कहा अब मैं 12 वर्ष के लिए तप करने जा रहा हूँ।

राम का तपस्या के लिए गमन

बेटा! देखो, राम को कोई भी यह नहीं कह सका कि तुम तपस्या करने न जाओ। महाराजा हनुमान ने यह कहा कि प्रभु! आप तपस्या करने जा रहे हैं, अब हम क्या करें? उन्होंने कहा-तुम भी तपस्या करो। उन्होंने कहा-प्रियतम! मुनिवरो! देखो, महाराजा शिव के साथ में, महाराजा गणेश जी और हनुमान जी समुद्र के तट पर एक विज्ञानशाला का निर्माण हुआ। वह उस विज्ञानशाला में अध्ययन करने लगे। राम देखो, माता अरुन्धती और वशिष्ठ मुनि के आश्रम में प्रवेश हो करके वह तपों में परिणत हो गये, अध्ययन करने लगे।

तपस्या का फल

मुनिवरो! देखो, विचार विनिमय होने लगा। दोनों की वार्ताएँ भी होती रहती थी, जिससे तर्क, संगति से धर्म और मर्यादा में परिणत हो करके आत्मज्ञान को, ज्ञान में सिमट करके चित्त के मण्डल को सूक्ष्म बना करके, कारण शरीर क्रिया के ऊपर चिन्तन करने से मानव के रजोगुणी जो संस्कार होते हैं वह सब समाप्त हो जाते हैं। यह है तपस्या का पफल, तपस्या तो प्रियतम मानी गई है।

मुनिवरो! देखो, जब भगवान राम वशिष्ठ मुनि के आश्रम में चले गये। तो एक समय मध्यरात्रि का काल था, मध्यरात्रि में माता अरुन्धती और वशिष्ठ मुनि महाराज दोनों अध्ययन कर रहे थे। माता अरुन्धती कह रही थी कि महाराज! आप तो बड़े तपस्वी, ब्रह्मवेत्ता हैं परन्तु राम को क्या बनाना चाहते हो? तो उस समय वशिष्ठ मुनि बोले कि हे देवी! राम चाहते क्या हैं? वह यह चाहते हैं कि मेरे जो रजोगुण के भाव हैं मेरे द्वारा जो मानव का नरसंहार, अपराध हुआ है, उस नरसंहार के जो संस्कार बन गये हैं, चित्तमण्डल में वह समाप्त हो जाएँ।

मन और प्राण के मध्य में संस्कार

उन्होंने कहा तो प्रभु! आप नरसंहार के संस्कार चित्त के मण्डल से कैसे समाप्त करोंगे? उन्होंने कहा-देवी! वेदों में अनेकानेक मंत्र इस प्रकार के आते हैं, उन मंत्रों के अध्ययन करने से और मानव को देखो, मन और प्राण की प्रतिभा में रत हो जाना क्योंकि मन और प्राण के मध्य में ही तो वह संस्कार निहित रहते हैं, वह संस्कार तन्मात्राओं के मध्य में रहते हैं, तन्मात्राओं से पृथक् नहीं हैं, उन तन्मात्राओं को जानना है। उन तन्मात्राओं को कैसे जाना जाएगा प्रभु! उन तन्मात्राओं को जानने के लिए अपने को प्रभु को समर्पित करना है। यह प्रभु का अनूठा जगत है और प्रभु के अनुठे जगत में जाए बिना मानव के चित्त के संस्कारों की सूक्ष्मता का समापन नहीं होता है। इसीलिए प्रभु जिसका चित्त आयतन है उसी में रत होना है। अरुन्धती इन वाक्यों को जान गई, उन्होंने कहा-धन्य

है।

मध्यरात्रि के समय माता-पिता के इन शब्दों को राम अपने आसन पर विद्यमान हो करके श्रवण कर रहे थे। वह अपने में विचार कर रहे थे कि वशिष्ठ मुनि महाराज मेरा क्या बनाना चाहते हैं और मैं क्या बनना चाहता हूँ इसके ऊपर विचार विनिमय होने लगा। उन्होंने कहा मैं देखो, गुरु को अपने को समर्पित करना चाहता हूँ।

मुनिवरो! देखो, उन्होंने अपने को वशिष्ठ को समर्पित कर दिया और वह शिक्षा देते रहे, वह अध्ययन करते रहे, सत्संग की बेला में परिणत हो गये और एक-एक वाक् को निर्णय देते रहे। वह तपस्या में परिणत हो गये। एकान्त स्थली पर विद्यमान हो करके राम प्रातःकालील ब्रह्मयाग में परिणत हो जाते, ब्रह्म का चिन्तन करते-करते दूर चले जाते। तो उनका यह क्रियाकलाप बन गया।

आज का हमारा विचार क्या कह रहा है मेरे प्यारे! देखो, हमें बहुत गम्भीर इस संसार और मानव के जीवन के ऊपर अध्ययन करना है। मानव का जीवन एक बड़ा विचित्र है इसके ऊपर नाना ऋषियों ने बहुत अध्ययन किया, अध्ययनशाला में परिणत रहे हैं। माताओं ने बड़ा सहयोग दिया है।

माता सीता गायत्री की गोद में

मुनिवरो! देखो, राम वशिष्ठ मुनि के आश्रम में तपस्या कर रहे हैं, सीता अयोध्या में एकान्त स्थली में गायत्री माँ की गोद में जा रही हैं। वह अपने में, तपस्या में परिणत हो गई क्योंकि मैंने रावण की बड़ी यातनाएँ सही हैं, मेरा चिन्तन सदैव अशुद्ध, क्षुद्र रहा हैं, मैं उसे नष्ट करना चाहती थी। देखो, एक-दूसरा, एक-दूसरे में सहयोगी बन करके जीवन की धारा की उपलब्धियं में परिणत हो रहा हैं। विज्ञान आत्मविज्ञान में प्रवेश कर गये हैं। आत्मविज्ञान पंचतन्मात्राओं में निहित रहता है, पंचतन्मात्राओं में भौतिकवाद है। बेटा! पंचतन्मात्रा का जहाँ समापन हुईं, प्राण का विज्ञान वहीं से शुरु हुआ, वहीं से आध्यात्मिकवाद की धाराओं का जन्म हुआ है। वह आध्यात्मिकवाद में प्रवेश कर गये हैं। देखो, तपस्या की चर्चा तो मैं इससे पूर्वकाल में प्रगट कर चुका।

आज का वाक् हमारा यह क्या कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए अपने चित्त के मण्डल को जानने के लिए सदैव तत्पर रहें और जब तक चित्त के मण्डल को नहीं जाना जायेगा, चित्त के मण्डल को त्याग करके जैसे जीवात्मा स्थूल शरीर को त्याग देता है, इसी प्रकार देखो, चित्त के मण्डल को, चित्त के सूक्ष्म शरीर को त्याग करके कारण शरीर में प्रवेश हो जाता हैं। कारण शरीर में प्राण और मन दोनों एक दूसरे में समावेश हो जाते हैं और वह आत्मा उसमें साम्यता में स्थिर हो जाता है। प्रभु का आनन्द उसे प्रतीत होने लगता है।

यह है बेटा! आज का वाक्। आज का वाक् हमारा क्या कह रहा है यह तो तुमने जान लिया होगा। ऋषि मुनि अपने में कितना अन्वेषण, कितना अनुसंधान करते रहे हैं। विज्ञान के अणु और परमाणुवाद में भी इसी प्रकार की विज्ञान की तरंगें हैं, जिन चर्चाओं को हम कल प्रगट करेंगे। कल मेरे प्यारे, महानन्द जी भी अपने दो शब्दों की विवेचना इसी विज्ञान के सम्बन्ध में प्रगट करेंगे। आज का हमारा वाक् यह क्या कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए परमपिता परमात्मा के विज्ञानमयी जगत से बेटा! पार होते चले जायें। ये है बेटा! आज का वाक् अब समय मिलेगा शेष चर्चाएँ तुम्हें कल प्रकट करूँगा। अब वेदों का पठन-पाठन। 19.10.1985 स्थान- सी-3/9, माडल टाउन

७ याग में निहित है राष्ट्र की पवित्रता 1985 10 20

जीते रहो, देखो, मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भाँति, कुछ मनोहर वेद-मंत्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद मंत्रां का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन किया जाता है क्योंकि वे परमपिता परमात्मा महान् हैं। जितना भी ये जड़ जगत अथवा चैतन्य जगत हमें दृष्टिपात होता रहता है।

याग द्वारा शुद्धिकरण

बेटा! जिस भी काल में साधक जन अपनी साधना में परिणत होता रहा है, तो वह साधना अपने में अनूठी बन करके, अपने में रत होना ही उसकी महानता का एक दर्शन है। जिसके ऊपर मानव परम्परागतों से ही नाना प्रकार के यागों का चयन करता रहा है। क्योंकि सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर के वर्तमान के काल तक नाना याज्ञिक पुरुष हुए हैं, उन्होंने याग के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न प्रकार की कल्पनाएँ की हैं और कल्पना ही नहीं इनको जानने का प्रयास भी किया और यहाँ याग के ऊपर विचारवेत्ता भी बने क्योंकि यह भी एक विज्ञान कहलाता है। जितना ऊर्ध्वा में एक महान् क्रियाकलाप है जिससे मानव का बाह्य और आंतरिक दोनों जगत का शुद्धिकरण होता है।

बेटा! बहुत पुरातनकाल हुआ हमारे ऋषि मुनि भयंकर वनों में विद्यमान हो करके जब साधना में परिणत हुए तो सबसे प्रथम तो मानव यह जान लेता हैं कि जिसकी हम साधना करना चाहते हैं वह वस्तु क्या है। उसके पश्चात प्रभु की प्रतिभा में वह अपने को ले जाता है, क्योंकि इन्द्रियों के ऊपर अनूठा अनुसंधान करता हुआ और जहाँ मानव की ज्ञानेन्द्रियाँ थकित हो जाती हैं अथवा मौन हो जाती हैं उससे आगे वह अपनी इन्द्रियों को मन के सहित बहुत गम्भीर मुद्रा में मुद्रित करने लगता है और ऐसी गम्भीर मुद्रा में चला जाता है कि यह लघु मस्तिष्क में प्रवेश हो जाता है और लोक लोकान्तरों की यात्रा करने लगता है। परन्तु साधक कहता है कि वह भी हमारी इन्द्रियों का एक रूप कहलाता है परन्तु वहाँ भी जा करके मानव मौन हो गया है।

लोकों की माला

बेटा! माला के सम्बन्ध में मैने बहुत पुरातनकाल में तुम्हें निर्णय दिया है। एक लोक की एक माला बनी हुई है द्वितीय लोक की द्वितीय माला बनी हुई है, तो ऐसी एक विचित्रमाला बन जाती है कि मानव विज्ञानवेत्ता बन करके, पृथ्वी के कणों को ले करके उनकी माला बना करके मानव आपो में प्रवेश करा देता है और आपो में प्रवेश करा करके मुनिवरो! देखो, उसकी एक माला बन जाती है। मानो देखो, आकाश गंगाओं तक चला जाता है। मुनिवरो! देखो, निहारिका और अवन्तिकाओं में प्रवेश हो जाता है, तो वहाँ जा करके साधक मौन हो गया। विज्ञानवेत्ता भी मौन हो जाते हैं परन्तु जब आगे एक मानव प्रवेश करता है और अपनी इन्द्रियों का साकल्य बना करके वह याग में परिणत कराता है तो वहाँ उसे वायुमंडल अनुकूल प्रतीत नहीं होता है।

तो हमारे ऋषि मुनियों ने इसके सम्बन्ध में बेटा! नाना प्रकार की औषधियों का साकल्य बना करके श्रद्धामयी घृत के द्वारा मुनिवरो! देखो, याग का प्रारम्भ किया। याग का जब प्रारम्भ हुआ तो बाह्यजगत वायुमंडल का शोधन हो गया। जब वायुमंडल का शोधन हो गया तो उसके पश्चात मनस्तव और प्राणस्तव की आभा में रत हो करके बेटा! वह साधक बनने लगा। जब साधना में रत हो गया तो मानव एक दूसरी आभा को जानने के लिए तत्पर हो गया।

मुनिवरो! देखो, याग हमारे यहाँ सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर के वर्तमान के काल तक इसका चलन बड़ा

विचित्र रहा है। परन्तु देखो, पूर्व आभा में रत रहने वाले अपने जीवन का प्रायः अपने में अनूठा अनुसंधान करने रहते हैं।

संसार रूपी यज्ञशाला

तो मेरे प्यारे! देखो, परमपिता परमात्मा ने संसार रुपी एक यज्ञशाला का निर्माण किया। इसके अन्तर्जगत् वालों ने आन्तरिक और बाह्यजगत दोनां में प्रवेश हो करके जानने का प्रयास किया। मेरे प्यारे! देखो, परमपिता परमात्मा का एक अनूठा उद्गीत चल रहा है, मुनिवरो! देखो, यह संसार क्रियाशील होता हुआ अपने में ही रत हो रहा है, अपनी आभा में आभाहित हो रहा है। तो मुनिवरो! देखो, यह परमपिता परमात्मा का ही अनूठा जगत है। वह संसार रुपी यज्ञशाला है इसमें होता, ब्रह्मा, उद्गाता,अध्वर्यु अपना-अपना उद्गीत गाते हुए संसार रुपी में यज्ञशाला क्रियाबद्ध हो रहे है।

तो आओ मेरे पुत्रो! मैं विशेष विवेचना तो तुम्हें देना नहीं चाहता हूँ क्योंकि यह वाक् पूर्वकाल में भी प्रगट किये हैं। आज तो मैं अपना विचार कोई देना नहीं चाहता हूँ क्योंकि मेरे प्यारे महानन्द जी बड़े उत्सुक रहते हैं अपने दो शब्द उद्गीत गाने के लिए। उनका एक विचार अपने में देखो, वह वेदनामयी शब्दों का उद्गीत गाते रहते हैं। अब मेरे प्यारे महानन्द जी अपने दो शब्द उच्चारण करेंगे।

पूज्य महानन्द जीः-ओ३म् मम प्रजा मम रथप्रजाः वाचाहं मम प्रजाहं देवं रथंजाहं विष्णु रुद्राः। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषिमंडल! अभी-अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव उस ब्रह्म की गाथा का गान गा रहे थे और हमें ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे इनके उद्गीत इनकी आध्यात्मिकवादिता सदैव हमारे श्रोत्रों में प्रवेश, श्रोत्रित होती रहे। आज मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कई समय से ब्रह्मवेत्ताओं की चर्चाएँ करते रहे हैं, प्रायः इनके विचार तो ब्रह्म की आभा में और विज्ञान में रत रहने का रहा है क्योंकि विज्ञान परम्परागतों से ही मानवीय मस्तिष्कों में प्रायः नृत्य करता रहा है। आज भी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव निहारिकाओं की और लोक, लोकान्तरों की चर्चाएँ कर रहे थे। उन लोकों की चर्चाएँ कर रहे थे जिन लोकों को हमने कदापि श्रवण भी नहीं किया, परन्तु उन मालाओं की चर्चा कर रहे थे जिन मालाओं को धारण करके मानव अपने में उद्गीत गाता रहा है। आज का विचार मेरे पूज्यपाद गुरुदेव एक भूमिका के रुप में परिणत कर रहे थे। परन्तु आज मैं इस चिन्तन में तो जाना नहीं चाहता हूँ।

आज मैं उस वाणी, उन विकृतियों की चर्चाएँ करना चाहता हूँ। जहाँ हमारी यह वाणी जा रही है, हमारा जहाँ यह वाक् जा रहा है, वहाँ हम एक याग को सम्पन्न होता हुआ दृष्टिपात कर रहे थे। मेरा हृदय बड़ा गद्गद् रहता है और हृदय यजमान के साथ रहता है। कि हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखंड बना रहे, क्योंकि देखो, ऐसे विचित्र काल में जहाँ मानव की विचारधारा एक विज्ञान में रत हो रही है, जहाँ यह विचार, वैज्ञानिक भी नहीं कह सकता।

देवपूजा

आज के समाज को मैं एक वाममार्ग की संज्ञा दिया करता हूँ क्योंकि ऐसे वाममार्ग के काल में मेरा यजमान अपने द्रव्य का सदुपयोग कर रहा है और वह देवयाग में रत है, वह देवपूजा में रत है क्योंकि देवताओं का आह्वान करना, शुद्धिकरण करना ही देवपूजा कहलाती है, वह देवयाग हैं। बहुत परम्परागतों से ही सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके प्रायः यागों का चलन हमारे वैदिक साहित्य में आता रहा है। इस याग को महापुरुषों ने क्रियात्मकता में लाने का प्रयास क्रिया है। महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने तो विज्ञान को, इस याज्ञिकविज्ञान को यहाँ तक आना है कि जितने यज्ञशाला में होताजन विद्यमान हुए उनका चित्र बन करके वह द्यौ लोक को जाता

हुआ यन्त्रों के द्वारा उन्होंने द्विपात् किया। पुरातन काल के वैज्ञानिकों ने याग को ले करके विज्ञान को जानने का प्रयास किया। इसीलिए उस विज्ञान का मानवीय जीवन में सदुपयोग होता रहा है।

आधुनिक काल का जो विज्ञान है वह याग से विमुख हो करके याग से दूरी हो करके वह केवल विज्ञान में ही रत हो गया और उस विज्ञान का परिणाम यह हो रहा है कि राष्ट्र का परमपिता परमात्मा के इस समाज का जो प्राणी है वह प्राणी उस विज्ञान को मनोरंजन की एक संज्ञा प्रदान कर रहा हैं और वह ऐसा मनोरंजन है कि मानव की अन्तरात्मा, अन्तर्हृदय दूषित होता जा रहा हैं, यही समाज का वाममार्ग बनना है।

राष्ट्र की पवित्रता

पुरातनकाल में मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को कहा था। आज राम के काल की मेरे पूज्यपाद चर्चा कर रहे थे। जब मुझे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव राम के काल में देखो, गृहों में प्रवेश होते या राष्ट्र में प्रवेश होते, तो भगवान राम के यहाँ घोषणा हो गई थी कि प्रत्येक गृह में वेद ध्वनि होनी चाहिए। प्रत्येक गृह में जब वेद ध्वनि होगी और देखो, वेद की सुगंधि और साकल्य की सुगंधि जब दोनो होगी तो मेरा राष्ट्र पवित्र बनेगा। भगवान राम प्रातःकालीन याग करते थे और समाज ने उसको क्रिया रुप दिया। जिससे अयोध्या का राष्ट्र पवित्रता में परिणत होता रहा।

आज के समाज ने उन महापुरुषों के, उन राष्ट्रों की प्रतिभा को भी दूषित किया और यागों को भी दूषित किया। महाभारत के काल में यागों में जो दूषितपन आया है याग के भ्रष्ट होने पर ही नाना प्रकार की सम्प्रदायों का चलन हुआ है। यदि अच्छा, बुद्धिमान ब्राह्मण समाज उसको अपनाता तो नाना प्रकार का रुढ़िवाद नहीं बनता, यह अज्ञानता समाज में नहीं आती जो अज्ञानता आज मुझे दृष्टिपात आ रही। आज जो भी सम्प्रदायवादी बनता है वही वाममार्गियों के ग्रंथों को अपना लेता है। महात्मा बुद्ध ने यह कहा कि मैं अहिंसा परमो धर्मी हूँ परन्तु उनके मानने वाले भी वाममार्ग के पथिक बने। इस प्रकार हम इस काल की चर्चा अपने पूज्यपाद गुरुदेव को परिचय रुप में देना प्रारम्भ करते हैं।

याग में विकृति

तो यज्ञशाला में भी जब याग करने लगे तो याग की दो प्रतिक्रिया बनी, याग की दो वेदियाँ बनी, एक याग की वह वेदी बनी जिसमें अग्न्याधान होता है और उस अग्न्याधान में यहाँ ब्राह्मण समाज ने, स्वार्थी प्राणियों ने वाममार्गियों ने उसमें देखो, मांस की आहुति को देना प्रारम्भ किया, हिंसा का प्रारम्भ किया। अपने रसास्वादन के लिए और अपनी निष्क्रियता के लिए मानव ने अपने में देखो, याग को भ्रष्ट करना प्रारम्भ किया। उसी आधार पर एक वेदी ऐसी बनाई गई जहाँ अहिंसा परमो धर्म को परम्परागतों से ऋषि मुनियों ने माना। महाभारतकाल के पश्चात अज्ञानतावश उन्होंने एक वेदी का और निर्माण किया। जिस वेदी में देवताओं का प्रथम पूजन हो जाता है, उस में सूर्य का पूजन है, उसमें वायु का पूजन है, मरुतगणों का पूजन है, भिन्न-भिन्न जैसे मार्जन और तर्पण है वह भी उसी के माध्यम से व्रत हो जाता है।

परन्तु देखो, यह दो वेदी किसलिए निर्माणित हुई? यह वाममार्ग के काल में हुई क्योंकि एक वेदी अहिंसा परमोधर्म की है और एक वेदी में हिंसा का प्रारम्भ हुआ। याग में हिंसा का चलन हुआ। एक वेदी में समर्पियामि कह करके उसको शान्त कर देते हैं। देवताओं का पूजन करने के पश्चात समर्पियामि हो गया। परन्तु वह जो अग्न्याधान है उसमें देखो, गौमेघ याग करने लगे। तो गौ के मांस की आहुति देना प्रारम्भ किया, यदि उसमें अश्वमेघ याग करने लगे तो घोड़े की आहुति का देना प्रारम्भ किया। उसमें नरमेघयाग करने लगे तो नरों की आहुति प्रदान करने लगे। वाजपेयी याग करने लगे तो बैल की बलि प्रदान करने लगे। परन्तु देखो, संसार ने जाना

नहीं याग के अनूठे रहस्यों को।

महाभारतकाल के पश्चात अज्ञानता

देखो, आधुनिक काल में क्या, महाभारत के काल के पश्चात अज्ञानता का प्रादुर्भाव हुआ मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह कहा कि हे भगवन्! यदि इस याग का तिरस्कार इस समाज में नहीं होता, याग के कर्मकांड को यह समाज अपने से दूरी नहीं करता, तो यह नाना प्रकार का जो यह सम्प्रदाय है, आज कोई मुहम्मद के मानने वाला है, कोई ईसा के मानने वाला है, कोई बौद्ध के मानने वाला है, कोई जैन सम्प्रदाय में परिणत हो गया, नाना प्रकार के जो सम्प्रदाय हैं, कोई नानक सम्प्रदायवादी बन गया, परन्तु यह सम्प्रदाय उसी काल में बने हैं जब यागों का तिरस्कार हुआ और मानव अपने कर्त्तव्य को शान्त कर गया। कर्त्तव्य की विहीनता में ही नाना प्रकार की अनास्था हो करके यागों के ऊपर देखो, मानव समाज ने कुठाराघात किया। देखो, उसी कुठाराघात का परिणाम यह हुआ कि यहाँ नाना प्रकार के सम्प्रदाय बने। आध्यात्मिकवाद में नहीं, सम्प्रदायवाद की केवल राष्ट्र तक सीमा रहती है। राष्ट्र को अपनाया जाए, एक दूसरे के प्राणों को नष्ट किया जाएँ, यहाँ तक सम्प्रदायओं की सीमाबद्धता का परिणाम यह कि देखो, धर्म के नाम पर एक प्राणी दूसरे प्राणी का भक्षक बन रहा है, प्राणी, प्राणी को नष्ट करना चाहता है। उसके मूल में क्या है? उसके मूल में देखो, राष्ट्र है। यदि राष्ट्र अपने को ऊँचा बना ले या राष्ट्र इस यज्ञपद्धति को अपना ले, तो यह राष्ट्र भी पवित्र बनेगा, यह राष्ट्र पवित्र बन जाए तो समाज में एक महानता आती चली जाएगी क्योंकि वैदिक साहित्य को जब तक राष्ट्र नहीं अपनाता, ज्ञान को विज्ञान को वह अपने में सार्थकता में प्राप्त नहीं कर सकता।

वैज्ञानिकों द्वारा त्रास

आज देखो, वैज्ञानिकों ने याग का तिरस्कार किया तो वैज्ञानिक कहाँ चला गया है? वैज्ञानिक यह कहता है आधुनिक काल का कि विज्ञान यह कहता है कि कुछ समय के पश्चात मानव, मानव के श्वांसों में दोषारोपण हो जाएगा। श्वांस लेते ही देखो, प्राणायाम अस्थियों में नष्ट हो सकता है, ऐसा आज का विज्ञान कहता है। परन्तु कुछ वैज्ञानिक आधुनिक काल में यह कहते हैं कि गौघृत में ऐसी क्षमता है कि अग्नि में प्रवेश करने से अग्नि का अभ्रत होने से अग्नि के परमाणु ऐसे हैं जो उस घृत के अग्नि में प्रवेश होने से अशुद्ध परमाणुओं को निगल सकते हैं, ऐसा आज का विज्ञान पुनः स्वीकार कर रहा है।

जब मैं पुरातनकाल के विज्ञान को लेता हूँ और आधानिककाल के विज्ञान को लेता हूँ, तो मुझे स्पष्ट होता है कि देखो, विज्ञान ने याग को ठुकराया है, तो ओर दूषित हो गया है। विज्ञान कहाँ तक दूषित हुआ है? नाना प्रकार की चित्रावलियों में जो आज चित्रों का चित्रदर्शन हो रहा है। मेरी पुत्रियों की नृत्य कलाएँ हो रही हैं। मानव उनको मनोरंजन की प्रतिभा कहता है। यह विज्ञान के ऊपर अपनी मानवता को नष्ट करता चला जा रहा है।

भारद्वाज मुनि की विज्ञानशाला

विचार आता रहता है भगवान राम के काल में देखो, नाना प्रकार की चित्रावली थी। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे वर्णन कराया, भारद्वाज मुनि के यहाँ नाना प्रकार की चित्रावली थी। एक-एक रक्त के बिन्दु से मानव का दिग्दर्शन होता था। आज का विज्ञान कहाँ है? आज का विज्ञान उससे दूरी चला गया है, रक्त के बिन्दु को यंत्र में प्रवेश किया और यत्र में ही देखो, उसी मानव का चित्र दृष्टिपात आता था। चाहे बिस्तर पर रक्त का बिन्दु हो चाहे वह कृतिका में रक्त रहने वाला बिन्दु हो, उस बिन्दु का यत्र में प्रवेश हुआ तो उसी मानव का चित्रण होता रहता था। आधुनिक काल का विज्ञान अभी बहुत अध्ूरेपन में मुझे दृष्टिपात आता है। आज के विज्ञान में

चित्रावलियों का दिग्दर्शन किया है।

यज्ञशाला का द्यौ गामी चित्र

परन्तु देखो, भारद्वाज मुनि के यहाँ जब नाना ऋषिवर जाते थे तो ऋषि कहते कि महाराज! हम आपकी विज्ञानशाला को दृष्टिपात करना चाहते हैं। देखो, भारद्वाज मुनि के यहाँ एक यज्ञशाला थी, वह यज्ञशाला 24 कोणों की यज्ञशाला थी, उसमें वह याग कराते थे। उन्होंने कहा-आओ, भगवन् ! देखो, यज्ञ का प्रारम्भ किया जाए। तो नाना प्रकार के साकल्यों के द्वारा, गौ घृत के द्वारा याग प्रारम्भ हुआ। याग के प्रारम्भ होते ही देखो, जो याग करा रहा है जिसमें होता, अध्वर्यु, उद्गाता हैं और वह जो याग हो रहा है उस यज्ञशाला का एक रथ बन गया है। वह रथ देखो, उनके यन्त्रों में दृष्टिपात आता रहता था। यज्ञशाला इतने आकार की है। होतागण, अध्वर्यु इत्यादि इतने आकार में विद्यमान हैं, इनका रथ द्यौ लोक में जाता हुआ दृष्टिपात होता था। यह विज्ञान की प्रतिभा थी।

मानवीयता का रक्षक विज्ञान

देखो, आधुनिक काल का विज्ञान उस तक अभी नहीं पहुँचा है, विज्ञान के वाघमय में पूज्यपाद गुरुदेव के देखो, जो विचार हैं जब मैं प्रगट करता हूँ तो मुझे ऐसा दृष्टिपात होता है कि आधुनिक काल का विज्ञान तो मानव को त्रास देता चला जाता है। वह प्राणी को कहता है कि ऐसे-ऐसे यन्त्रों का निर्माण हो गया कि वायु में त्यागते ही देखो, प्राणी समाप्त हो जायेगा। अरे, विज्ञान तो परम्परागतों से मानवीयता का रक्षक कहलाता है क्योंकि प्रत्येक मानव परम्परागतों से एक अनुसंधान करता रहा है, विचार विनिमय करता रहा है। अपने मस्तिष्कों में नृत्य कराता रहा है विज्ञान का। यह विज्ञान आज से नहीं परम्परागतों से सृष्टि के प्रारम्म से चला आ रहा है। आधुनिक काल का प्राणी यह कहता हैं कि विज्ञान अपने में क्यों?

पूर्व वैज्ञानिकों के अंतरिक्ष में यन्त्र

परन्तु जब हम वैदिक साहित्य में प्रवेश करते हैं और एक-एक वेद मंत्र के ऊपर गति करना प्रारम्भ करते हैं, उसका अन्वेषण करते हैं, तो एक-एक वेद मंत्र में ज्ञान और विज्ञान दृष्टिपात आता रहता है। अहा! जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को आधुनिक काल के विज्ञान की चर्चा कराता हूँ पूर्व वैज्ञानिकों ने अन्तरिक्ष में देखो, यन्त्रों को त्याग दिया है और वह यन्त्र अपनी स्थलियों पर कहीं स्थिर हो जाते हैं, कहीं गति करते रहते हैं और उनकी छाया जब इस पृथ्वीमंडल पर आती है तो पृथ्वीमंडल का प्राणी आश्चर्य चकित हो जाता है।

घटोत्कच और भीम के यन्त्र की विद्यमानता

मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को वर्णन कराया था कि महाभारत के काल में घटोत्कच और भीम दोनों अपने में अन्वेषण करते रहते थे। वह व्यास मुनि से अपनी सहायता और भी नाना ऋषिवर उनके समीप आते रहते थे। एक यन्त्र उन्होंने ऐसा निर्माणित किया था जो यन्त्र आज भी अन्तरिक्ष में विद्यमान है। जो बुद्ध की कक्षा में स्थिर हो रहा है, उस यन्त्र की छाया किसी-किसी काल में इस पृथ्वीमंडल पर, समुद्र में प्रवेश हो जाती है। तो समुद्र में उसकी छाया में जो भी यन्त्र आ जाता है। जलाशय में देखो, यन्त्र का यह प्रतीत नहीं होता कि वह यन्त्र कहाँ चला गया। ऐसा वैज्ञानिकजन आधुनिक काल के वैज्ञानिक इसके ऊपर अन्वेषण करते हैं, विचार विनिमय करते रहते हैं।

यन्त्र का प्रभाव

परन्तु यह यन्त्र ''ब्रह्मवाहा स्वः'' यह यन्त्र महाभारत के काल में घटोत्कच, भीम और व्यास मुनि की सहायता से एक यन्त्र का निर्माण हुआ था उस काल में और वह यन्त्र आधुनिक काल, वर्तमान के काल में बुद्ध की ओर पृथ्वी के कक्ष में दोनों में रत हो रहा है। दोनों में गति कर रहा है जब भी उसकी छाया आती है, तो

समुद्रों पर आती है, चाहे वायुयान हो, चाहे जलयान हो, सब का सब वह भस्मीभूत कर देता है, जो उसकी छाया में आ जाता है। वैज्ञानिक उसके ऊपर अन्वेषण करें, कोई तो वैज्ञानिक कहता है यह देव या कोई अद्भुतता है, कोई कहता है देव अन्तरिक्ष में रहते है, कोई कुछ कह रहा है। परन्तु यह वैज्ञानिक यन्त्र है जिसके ऊपर मानव को चिंतन करना होगा। आगे चल करके इसके ऊपर चिन्तन किया जा सकता है।

याग से अन्तरात्मा की प्रसन्नता

आज मैं विशेष चर्चा प्रगट करने नहीं आया हूँ। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह प्रार्थना करने आया हूँ कि हे प्रभु! यह जो मेरा अन्तरात्मा प्रसन्न हो रहा है क्योंकि मैं याग को दृष्टिपात कर रहा हूँ। आज ऐसे वाममार्ग काल में जो नाना चित्रावलियों को मन की रंजनता का प्रतिपादन कर रहा है। प्राणी द्रव्य का दुरुपयोग कर रहा हैं, वाममार्ग में इसका आहार भी अशुद्ध हो गया है, इसके आहार में वाममार्गता आ गई है, नाना प्राणियों का यह भक्षण कर रहा है, नाना प्राणी से अपने उदर की पूर्ति रत कर रहा है। मुझे आश्चर्य होता है कि यह समाज कैसा बन गया है, यह जगत कैसा बन गया है। यह वाममार्ग नहीं तो और क्या है? मैं यह कहता हूँ कि हे यजमान! ऐसे काल में जहाँ वाममार्ग हो, कुछ सम्प्रदाय तो यही कहते है इसको हम पान नहीं करेंगे तो हमारे शरीर नहीं रहेंगे, हमे नाना प्रकार की परमाणु शक्ति इससे प्राप्त होती है, ऊर्जा प्राप्त होती है, बहुत से प्राणी ऐसे हैं जो धर्म के नामों पर उन्हें बद्ध करके अपनी रसना का स्वादन बना रहे हैं। इसी को तो वाममार्ग कहते हैं। आज का प्राणी जो भी मांस भक्षण कर रहा है वही वाममार्ग के कक्ष में गति कर रहा है, उसी की कक्षा में आ रहा है।

आज मैं विशेष नहीं पूज्यपाद गुरुदेव को वर्णन करा रहा हूँ कि हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखंड बना रहे। क्योंकि ऐसे काल में जहाँ द्रव्य का दुरुपयोग होता है, वहाँ वह देवताओं का देवयाग कर रहा है, देवताओं को प्रसन्न कर रहा है, अपने शुद्ध हृदय से अपनी सप्तऋषियों से प्राप्त होने वाला मानव अपने में महान् बना करता है।

धर्म का एकोकी रूप

तो मैं आज विशेष चर्चाएँ न देता हुआ, आज का विचार यह कि आज का राष्ट्रवाद भी नाना धर्मों की चर्चा कर रहा है, वह भी वाममार्ग के कक्ष में गति कर रहा है, कैसे कर रहा है? ब्रह्मव्रताम् जब किसी धर्म के ऊपर वह यह कहता है कि नाना धर्म होते हैं तो मैं यह कहता हूँ कि हे भोले राजन्! तू यह क्या उच्चारण कर रहा है? नाना धर्म तो होते ही नहीं, धर्म तो एक ही होता है। धर्म एकोकीकरण कहलाता है उसमें बहुवचन नहीं होता है, एकोकीकरण होता है। इसीलिए एकोकी धर्म को लाने के लिए अपने राष्ट्र में प्रयास कर रहा है। तेरा राष्ट्र तब उच्चता को प्राप्त होगा, महान बनेगा, जब तू वैदिक साहित्य को अपना करके देखो, बुद्धिजीवी प्राणी तेरे राष्ट्र में हो, याज्ञिक हो, देखो, विज्ञानशाला में याग कर्म करने वाले हो और वे विज्ञान का अनूठा अनुसंधान करके तेरे राष्ट्र को ऊँचा बनाएँ। हे राजन्! आज तू अपने राष्ट्र को ऊँचा यदि बनाना चाहता है, राष्ट्र को पवित्र बनाना चाहता है तो तेरे राष्ट्र में नाना प्रकार के सम्प्रदायों का समूह नहीं रहना चाहिये। सम्प्रदाओं का विनाश होना चाहिए। जो अज्ञानता के आभा में रत हो करके राष्ट्रीयता तक सीमित रहते हैं। एक वैदिकता तेरे राष्ट्र में होनी चाहिए। वह जो राष्ट्रीयता है वही तो तुझे ऊँचा बनाएगी। क्योंकि राष्ट्र में एक धर्म होना चाहिए। धर्म किसे कहते हैं? आज के मानव ने केवल एक रुद्रों में स्वीकार कर लिया है।

धर्म का स्वरूप

देखो, जब मैं यह विचारता हूँ कि धर्म किसे कहते हैं? मेरे पूज्यपाद गुरुदेव धर्म की बड़ी विचित्र व्याख्या

करते रहते हैं। वे कहते हैं कि धर्म तो मानव की पाँच ज्ञानेन्द्रियों में समाहित रहता है, रुप, रस, गंध इत्यादियों में रत रहने वाला है। आज मानव कुदृष्टिपान करता है तो उसका अन्तरात्मा उसे धिक्कारता रहता हैं, इस प्रकार वही उसका धर्म कहलाता है।

धर्म किसे कहते है? जो इन्द्रियों में सजातीय हो देखो, धर्म भिन्न रुपों को नहीं कहते। धर्म तो एकोकी वचन कहलाता है और वही राष्ट्र को ऊँचा बनाता है। इसलिए राजा को चाहिए कि राजा के राष्ट्र में रुढ़ि नहीं रहनी चाहिए। जब यहाँ रुढ़ियाँ नहीं रहेंगी तो राष्ट्र, समाज पवित्र बनेंगे। यहाँ अश्वमेघ याग करने वाले बनेंगे।

बलि का स्वरूप

अश्वमेघ यागों ने महाभारत-काल के पश्चात अश्व नाम देखो, घोड़े का वाची लिया है। विचारा नहीं, अश्व नाम तो राजा का है और मेघ नाम प्रजा का है, प्रजा और राजा मिल करके जब प्रिय याग करते हैं, सुन्दर क्रियाकलाप करते हैं तो वही उनका क्रियाकलाप बन जाता है। तो वही याग कहलाता है। वाजपेयी यागों में यहाँ देखो, जब वाजपेयी याग होते हैं तो वाजपेयी यागों में बैल की बलि को स्वीकार किया है। बलि के अर्थ को समाज ने नहीं जाना है कि बलि किसे कहते हैं? बलि कहते हैं पुरुषार्थ को, जितना मानव पुरुषार्थ कर जाता है और निष्पन्न हो करके पुरुषार्थ करता है। वह अपने प्राण अपने मनस्तव को समर्पित कर देता है। वह समर्पित की जो भावना हैं उसी को देखो, द्वितीय रुप में बलि की प्रथा में परिणत कर दी जाती हैं।

परन्तु देखो, मानव को प्रत्येक रुप में निष्पन्न हो करके पुरुषार्थ करना चाहिए। वही, उसकी बलि में प्रतिपादित होती रहती है तो विचार विनिमय क्या? यहाँ नाना प्रकार का शब्दों से अज्ञान लिया है, उस अज्ञान को नष्ट करना चाहिए और वह नष्ट उस काल में होगा जब राष्ट्र पवित्र होगा, राजा पवित्र होगा।

राम राष्ट्र के क्रियाकलाप

भगवान राम की गाथा मुझे स्मरण आती रहती है। उनके राष्ट्र का क्रियाकलाप भी मुझे स्मरण आता रहता है। जब भगवान राम अपने राष्ट्र में यह घोषणा करते रहते कि प्रत्येक गृह में याग होना चाहिए। बुद्धिजीवी प्राणियों का ”वास नहीं होना चाहिए। जिस राष्ट्र से बुद्धिजीवी प्राणी चले जाते है, तो उसका प्राण चला जाता है क्योंकि बुद्धिजीवी प्राणी उसे कहते है जो चरित्र को ऊँचा बनाता है और जिस राष्ट्र में से चरित्र चला जाता है, मिथ्यावाद आ जाता है, उस राष्ट्र का प्राण चला गया है जैसे मानव के शरीर से प्राण चला गया तो मानव का शरीर शून्यता को प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार किसी राजा के राष्ट्र से प्राण चला गया है, चरित्र चला गया है, तो राष्ट्र में क्या रह गया? इसीलिए बुद्धिजीवी प्राणी राजा के राष्ट्र में होने चाहिए। मानवता की मानवीयता होनी चाहिए, जिससे मानव अपने में देखो 'सः उप्रतो रुद्राः सम्भो लोकाम्' वह अपने में महान् बन करके इस संसार सागर से पार हो जायेगा।

अज्ञान से रुढियाँ

आज मैं विशेष चर्चाएँ प्रगट करने नहीं आया हूँ। आज मैंने तुम्हें कुछ बिखरे हुए वाक्यों को एकत्रित करने का प्रयास किया है कि हमारे यहाँ यागों की भिन्न-भिन्न प्रथा से भिन्न-भिन्न प्रकार का अशुद्धवाद आया और जिससे याग का तिरस्कार हुआ। देखो, याग का तिरस्कार नहीं होना चाहिए। राष्ट्र को याग अपनाना चाहिए। क्योंकि राजा जब याग करता है तो वहाँ के राष्ट्र का प्रत्येक प्राणी याज्ञिक बन जायेगा।

देखो, भगवान राम प्रातःकालीन याग करते थे, तो सर्वत्र अयोध्या का राष्ट्र याज्ञिक बन गया। पुरातनकाल में भी भगवान मनु के जितने भी वंशज थे उन्होंने याग को प्रमुख माना है और नाना प्रकार के याग होते रहे तो

तप का महत्व

मनुवंश चरित्रता में महान् बने, रुढ़ि पनपने नहीं पाती। रुढ़ि उसी काल में पनपती है जब अज्ञान आ जाता है समाज में। अज्ञान आ करके आत्मा देखो, यह चाहता है कि मुझे ब्रह्म का एक सुन्दरमार्ग प्राप्त हो। जिससे मैं ब्रह्मवेत्ता अपने को जानने वाला बनूँ। परन्तु देखो, आगे अज्ञान प्राप्त होता है तो वह रुढ़ियों को प्राप्त कराता है और अज्ञान रुढ़ियों को पनपाता रहता है।

इसीलिए देखो, रुढ़ि नहीं रहनी चाहिए। अज्ञान नहीं रहना चाहिए, वैदिक ज्ञान का प्रसार होना चाहिए। क्योंकि वेद का एक-एक मंत्र हमें ऊर्ध्वा मार्ग पर ले जाता है। एक-एक वेदमंत्र हमें महानता का दिग्दर्शन कराता है, याग का दर्शन कराता है और जितना संसार का ज्ञानयुक्त कर्म है वह सर्वत्र एक याग में परिणत माना गया है।

यौगिकवाद

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे कई काल में वर्णन कराते हुए कहा कि यहाँ तो सर्वत्र ही एक याग के रूप में माता पुत्र को उत्पन्न करना चाहती है, पति-पत्नी भी यह कहते हैं कि हम पुत्रयाग करना चाहते हैं। संतान का उत्पन्न करना भी एक याग माना गया है। जब यहाँ प्रत्येक क्रियाकलाप एक याग के रुप में है तो मानव को अपनी शुभकामना क्यों नहीं ऊर्ध्वा में लानी चाहिए। हे मानव! तू अपने जीवन को महान् बना, यहाँ विज्ञान भी याग है, जबकि सूक्ष्म ऊर्ध्वा परमाणुवाद में प्रवेश हो जाता है, एक-एक परमाणु में याग को दृष्टिपात करता है।

याग का प्रभाव

मुझे स्मरण आता रहता है, यहाँ याज्ञिक पुरुषों ने एक परमाणु को जाना है, उस परमाणु का विभाजन किया है, उस परमाणु के विभक्त करने से ही ब्रह्माण्ड का दिग्दर्शन होता रहा है। वह यौगिकवाद कहलाता है, उसको यौगिक याग कहते हैं। उसी को देखो, बाह्यजगत में लाने से भौतिक विज्ञान कहते हैं और उसे आन्तरिकता में लाने से उसको आध्यात्मिक विज्ञान कहते हैं। दोनों प्रकार के विज्ञान का जब समन्वय होता है, दोनों प्रकार के विज्ञान के समन्वय होते ही समाज में विचित्र गतियाँ बन जाती हैं और वह राष्ट्र पवित्र बन जाता है। समाज में नष्ट होने की प्रवृत्तियाँ नहीं रह पाती। यह जो नाना प्रकार की आज नष्ट होने की प्रवृत्तियाँ वर्तमानकाल में उत्पन्न हो रही है उसके मूल में याग का न होना है क्योंकि याग इतने हो जाएँ कि वायुमण्डल को सुगन्धि से भरण कर दे। पदार्थों से, शुद्धता से भरण कर दे। तो यह आज का जो अणुवाद है अपनी आभा अपने कक्ष में रत हो रहा है। इसके प्रभाव को वह निगलने वाला बन सकता है।

याग से पवित्रता

परन्तु आज मैं विशेष चर्चा प्रगट करने नहीं आया हूँ। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाता रहता हूँ। हे भगवन्! मैं केवल अपनी वार्ता यही कहता हूँ कि जब तक राष्ट्र अपने में पवित्र न बनेगा तब तक समाज का कल्याण नहीं होगा। पृथ्वी की हम उज्ज्वलता को बना सकते हैं तो केवल याग के द्वारा। हमारा क्रियाकलाप पवित्र हो, जिससे हमारा चरित्र और मानवता ऊँची बन जाएँ। हमारा आहार और व्यवहार दोनों पवित्र बन करके अपनी मानवीयता को ऊँचा बना लें क्योंकि परम्परागतों से ही इसके ऊपर महापुरुषों ने बल दिया है और उसके बल देने का परिणाम यह है कि मानव अपने-अपने कालों में पवित्र होते रहें। आज का विचार क्या आज मैं अपने विचारों को यहीं विराम देना चाहता हूँ।

रूढ़ियों की समाप्ति का प्रयास

क्योंकि वार्ताएँ तो बहुत-सी हैं प्रगट करने की, परन्तु आज का विचार केवल इतना ही है कि हे राजन्! तेरे राष्ट्र में नाना प्रकार की रुढ़ि नहीं रहनी चाहिए और उसका एक ही राष्ट्रीयकरण होना है कि जितने रुढ़ियों के

आचार्य हैं, उन आचार्यों को एक स्थली पर विद्यमान करते हुए उनकी संहिता होनी चाहिए। उनकी आचार संहिता के साथ उनके विचारों में समन्वय किया जाये और जिनके विचार ज्ञान युक्त, परोपकार युक्त समाज से गुँथे हुए परमात्मा से गुँथे हुए है और वैदिक ध्वनि जिनकी पवित्र हो, उसी को अपना लेना चाहिए। इस प्रकार नाना प्रकार की रुढ़ियों को समाप्त कर सकता है राजा और एक यही मूल कि नाना प्रकार की जो कुरीतियाँ आ गई हैं उनको नष्ट करना है और एक ही आसन पर विद्यमान हो करके बुद्धिमान अपने में याग में, आत्मयाग में, ब्रह्मयाग में नाना प्रकार के देवपूजा में रत होता रहे और राजा स्वतः अपने चरित्र और मानवीयता को ऊँचा बना सकता है, परन्तु सबसे प्रथम यह क्रियाकलाप राजा के राष्ट्र में होना चाहिए जिससे यह समाज पवित्र बन जाए।

तो आज का वाक् अब हमारा समाप्त होने जा रहा है। आज का वाक् यही कि हे यजमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखंड बना रहे। मेरी सदैव यह कामना रहती है कि यागों का चलन सृष्टि के प्रारम्भ से रहा, सम्प्रदायों ने इसका तिरस्कार किया तो सम्प्रदाय अपने में अज्ञानतावश रत हो गये, देखो, रक्तभरी क्रान्ति के लिए सदैव विचारती रहती हैं। एक याज्ञिक पुरुष ऐसा है जो याग में परिणत होनेवाला है वह दूसरों के लिए, अपने लिए भी केवल जीवन की और मृत्युंजयी बनने की कामना करता है और जितने सम्प्रदाय हैं वह चाहते हैं कि इसको नष्ट करो और तुम जीवित रहो।

तो यह जो परम्परा है, यह हमारी वैदिक परम्परा नहीं, यह परम्परा विनाश के मार्ग पर ले जाने वाली है। हे यजमान! तेरे जीवन का सौभाग्य महान बना रहे। तू अपने द्रव्य का सदैव देवपूजा में सदुपयोग करता रहे और राष्ट्र को अपनी आभा पहुँचाता रहे। हे राजन्! तू याज्ञिक बन, जिससे देखो, तेरा राष्ट्र पवित्र बन जाएँ। यह वाक् अब हमारा समाप्त होने जा रहा है, पिफर पूज्यपाद गुरुदेव समय देंगे तो शेष चर्चाएँ करेंगे।

पूज्यपाद गुरूदेवः- आज मेरे परम सरस्वती व्रत को धारण करने वाले, मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपने जो विचार व्यक्त किये हैं, वह प्रायः वेदना से युक्त हैं। इनकी सदैव यह कामना रहती है कि राष्ट्र पवित्र बने और राष्ट्र पवित्र तभी बनेगा जबकि राष्ट्र अपनी प्रजा को शोधन करने वाला बने। यह परम्परागतों का वाक् है। हमारे यहाँ पूर्व अतीत के काल में भी प्रायः राजा इसी प्रकार के क्रियाकलापों में लगे रहते थे और उनका राष्ट्र पवित्र बना रहता था। तो आज का वाक् समाप्त, अब वेदों की आभा समाप्त हो गई है। 20. 10. 1985 स्थान - सी-3/9, माडल टाउन, दिल्ली

८ तप का महत्व 1985 10 22

जीते रहो, देखो, मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण-गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद-वाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेद वाणी में, उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का गुण-गान गाया जाता है, क्योंकि वे परमपिता परमात्मा महान है। उन का गुण-वादन करना प्रायः यह हमारा कर्त्तव्य माना गया है, क्योंकि वे संसार की प्रत्येक आभा में, एक-एक परमाणु में निहित रहते हैं। संसार की कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, कोई स्थली ऐसी नहीं जहां वे परमपिता परमात्मा न हो! पर्वतों की कोई भी गुपफा ऐसी नहीं है, समुद्रां की कोई भी तरंगे ऐसी नहीं जहाँ वे परमपिता परमात्मा न हो। वह जड़वत् में और चैतन्यवत् में सर्वत्रता में निहित है।

आन्तरिक और बाह्यजगत का समन्वय

हमारे यहाँ परम्परागतों से ऋषि-मुनिओं ने इस सम्बन्ध में बहुत अनुसन्धान किया और तपस्या के वाघमय में प्रवेश होकर के बाह्य जगत को आन्तरिक जगत में ले गए हैं और आन्तरिक जगत का बाह्य जगत से उन्होंने समन्वय किया है। परन्तु उनका बड़ा गम्भीर अध्ययन रहा है। केवल शाब्दिक और कहने में ही नहीं, उनको मुद्रा का भी गम्भीर अध्ययन रहा है। चिन्तन और मनन करने की जो प्रायः एक आभा हैं वह मानवीय मस्तिष्कों में सदैव निहित रही है?

तपस्विता

आज का हमारा वेद मन्त्र क्या कह रहा है? आज का वेद मन्त्र कहता है कि हे मानव! तू अपने जीवन में महान और तपस्वी बनने के लिए तत्पर हो, क्योंकि तेरा जो मानसिक जीवन है वह तपोमयी होना चाहिए, क्योंकि संसार का प्रत्येक पदार्थ तपायमान हो रहा है, क्योंकि तपने के पश्चात उसमें नाना प्रकार की आभाओं का जन्म होता है वह मानव को महान, पवित्र स्थलियों पर परिणत कर देता है। हमारे यहाँँ तपाने के पश्चात ही दो प्रकार के विज्ञान की उपलब्धि हुआ करती है। एक विज्ञान हमारे यहाँ भौतिकवाद में परिणत रहता है और द्वितीय विज्ञान आध्यात्मिकवादी कहलाता है। दोनों प्रकार के ज्ञान और विज्ञान में जब मानव अपने को ले जाता है तो आध्यात्मिकवाद और भौतिकवाद के वाघमय में प्रवेश होता हुआ अपने को विजय करता है, विजेता बन जाता है।

अग्नि तुल्य जीवन

तो दोनों प्रकार के विज्ञान की उपलब्धि जन्मं ब्रह्मेः तप के द्वारा। जब हम यह विचारते हैं कि अग्नि तपायमान है, वह अग्नि अपने में ऊर्ध्वा कहलाती है और वह अपने में तपायमान है तो उस को अग्नि कहा जाता है, विभक्त करने की क्षमता उसमें होती है इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु तपायमान है। जब हम यह विचारते हैं कि मानव का जीवन भी अग्नि के तुल्य होना चाहिए जो तपोमयी कहलाती है, इसी प्रकार मानव का जीवन भी तपोमयी होना चाहिए। प्रत्येक मानव प्रत्येक परमाणु तपोमयी गति कर रहा है, तपोमयी ऊर्जा प्रवेश कर रही है, सूर्य द्यौ से प्रकाश लेकर के ऊर्जा को प्रदान करता रहता है। ऊर्ध्वा में वह अपने को ले जाता है और नाना प्रकार की आभा में रत रहने वाला है।

तप से ऊर्ध्वा

मेरे प्यारे महानन्द जी इससे पूर्वकाल में मुझे कुछ वैज्ञानिकों की आभा में ले गए और वह द्वापर काल का

विज्ञान था। वह विज्ञान जो पृथ्वी मण्डल से लेकर के शुक्र और बुद्धमण्डल तक की प्रतिक्रियाओं का इन्होंने वर्णन कराया। वर्णन ही नहीं कराया वह अपने में सारस्वत है। वह अपने में विचित्रतम कहलाता है। हमारे यहाँ ऐसे वैज्ञानिक सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर के, अतीत के काल से लेकर के वर्तमान के काल तक नाना वैज्ञानिक हुए हैं जिन वैज्ञानिकों ने तप किया है और तप से ऊर्ध्वा को जन्म दिया है और तप के द्वारा भौतिक विज्ञान के मार्ग से होकर के आध्यात्मिकवाद में उन्होंने प्रवेश किया हैं। तो आज यह कोई नवीन वाक्य नहीं है। यह तो परम्परागतों की वार्ताएँ है।

भगवान राम के तप गमन पूर्व द्वितीय सभा

आज मैं तुम्हें इस सम्बन्ध में विशेष विवेचना देने नहीं आया हूँ क्योंकि यह तो विज्ञान है। आज मैं तुम्हें आध्यात्मिकवाद के क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ। बेटा! इससे पूर्व काल में तुम्हें ये चर्चाएँ प्रकट की थी कि भगवान राम के जीवन के सम्बन्ध में, जब वह लंका को विजय करने के पश्चात अपने आश्रम में उन्होंने सभाएँ की। मैंने तुम्हें एक सभा की चर्चा बहुत पूर्व काल में की। द्वितीय सभा की चर्चा मैं इस काल में कराने जा रहा हूँ। बेटा! भगवान राम जब तपस्या के लिए जाने लगे, तो जाने से पूर्व महाराजा भरत और शत्रुघ्न दोनों एक स्थली पर विद्यमान थे। दोनों यह विचार-विनिमय कर रहे थे कि राम जब तप को चले जाएंगे तो हमारा अयोध्या राष्ट्र कैसे पनपेगा इसकी नियमावली का निर्माण कैसे हो सकेगा?

तपस्वी

जब भरत जी ने शत्रुघ्न से यह श्रवण किया, तो उन्होंने कहा तुम क्या चाहते हो शत्रुघ्न? उन्होंने कहा कि भगवन्! मैं चाहता हूँ कि राम को ऋषि-मुनिओं के द्वारा जो इस राष्ट्र के बुद्धिजीवी प्राणी हैं अथवा तपस्वी हैं, चाहे वह अयोध्या राष्ट्र के भी न हों। पृथ्वी मण्डल पर किसी भी स्थली पर कोई भी तपस्वी हो उसके द्वारा इनसे आग्रह किया जाए तो बहुत प्रिय होगा, क्योंकि राष्ट्र को, समाज को जो ऊँचा बनाता है वह भी तो तपस्वी कहलाता है।

जमदग्नि का अभिप्राय

देखो, मुनिवरो! जब उन्होंने यह वाक्य कहा तो भरत जी ने यह वाक्य स्वीकार कर लिया। स्वीकार करके राम से ओझल होकर के उन्होंने ऋषि-मुनिओं को निमन्त्रित किया। ऋषि-मुनिओं में महर्षि जमदग्नि ऋषि महाराज जिसकी चर्चाएँ मैंने बहुत पुरातन काल में भी की। जमदग्नि उसे कहते है जो अग्नि का चयन करने वाला है। वेद की एक आख्यायिका भी आती है और वह यह कि जमदग्नि उसे कहते हैं जो अग्नि का प्रातःकालीन चयन करता है, सायंकालीन अग्नि का चयन कर रहा है, अग्नि को आवरणीय के द्वारा अपने में धारण कर रहा है, वह जमदग्नि कहलाता है।

ऋषियों का समूह

तो महात्मा जमदग्नि को प्रथम निमन्त्रण दिया और महात्मा जमदग्नि की अध्यक्षता में वह सभा हुई जिसमें महर्षि वैशम्पायन, महर्षि सोमकेतु, महर्षि भारद्वाज, ब्रह्मचारी कवन्धी, ब्रह्मचारी सुकेता, ब्रह्मचारी पनपेतु, ब्रह्मचारिणी शबरी, महर्षि वशिष्ठ, माता अरून्धती और महर्षि अटूटी मुनि महाराज, सोमवृतिकेतु मुनि और महर्षि कुक्कुट और भी नाना ऋषिवर, गाड़ीवान रेवक मुनि महाराज, महर्षि विभाण्डक, महर्षि विश्वश्रवा और भी नाना देव-ऋषि इत्यादियों का एक समूह एकत्रित हुआ जिसमें महर्षि पिपलाद मुनि का भी आगमन हुआ। चाक्रणी गार्गी भी वनों से सभा में आयी। नाना ब्रह्मवेत्ताओं का एक समाज एकत्रित हुआ।

बेटा! नाना ब्रह्मवेत्ताओं का समाज जब एकत्रित हुआ तो राम अपने में बड़ा आश्चर्य कर रहे थे कि यह

हमारा कैसा सौभाग्य है कि आज ऋषि-मुनिओं का आगमन अयोध्या में हुआ है। यह अयोध्या तो बड़ी भाग्यशाली है। यह विचार रहे थे अपने मन में कि यह ऐसा हो क्या रहा है? महर्षि इत्यादि मुनिओं की एक सभा हुई। ऋषि-मुनिओं का स्वागत किया गया और स्वागत करने के पश्चात उस सभा में एक स्थली पर राम का आसन लग गया और वह स्थली पर विद्यमान हो गए। राम को यह जानकारी नहीं थी कि ऋषि-मुनिओं का समाज कैसे एकत्रित हुआ है? भरत और शत्रुघ्न दोनों ने नाना प्रकार के भोज्यों से उनका अतिथि सत्कार किया। सत्कार करने के पश्चात भरत और शत्रुघ्न एक स्थली पर विद्यमान हो गए।

महर्षि जमदग्नि की अध्यक्षता में सभा

मुनिवरो! देखो, महर्षि जमदग्नि ऋषि महाराज की अध्यक्षता में उस सभा का आयोजन हुआ। महर्षि जमदग्नि ऋषि महाराज ने अपने आसन को ग्रहण कर लिया। सब ऋषि-मुनिओं ने अपने कण्ठ से उनकी सराहना की, कि यह हमारा सौभाग्य है कि महात्मा जमदग्नि ऋषि महाराज के द्वारा यह क्रियाकलाप प्रारम्भ और सम्पन्न होगा।

महर्षि प्रवाहण की जिज्ञासा

परन्तु महर्षि प्रवाहण ने कहा, कि जो महात्मा जमदग्नि इन ब्रह्मवेत्ताओं के समाज की अध्यक्षता करने के लिए तत्पर हुए हैं, क्या इस सभा का इन्हें अधिकार भी है? क्योंकि यहाँ गाड़ीवान रेवक और महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज भी विद्यमान है जो विज्ञान में भी और आध्यात्मिकवाद में भी पारायण हैं। गाड़ीवान रेवक मुनि महाराज को एक सौ पांच वर्ष हो गए हैं गाड़ी के नीचे अपने जीवन को व्यतीत करते हुए। हमारी उत्कट इच्छा यह है कि हमें इसकी कैसे जानकारी हो? महाराजा भरत ने महात्मा जमदग्नि से कहा, भगवन्! इसका उत्तर दीजिए।

महात्मा जमदग्नि ने कहा, हे ऋषिओं! यह विवाद का तो विषय नहीं है यह तो तुम्हारी जिज्ञासा है। यह तुम्हारे हृदय में क्यों उत्पन्न हुई है? तो महार्षि दालभ्य ने कहा प्रभु! हम इसलिए जानना चाहते हैं कि यह जो समूह है, यह बुद्धिमानों का है, यह तपस्वियों का है, यह ब्रह्मवेत्ताओं का और ब्रह्मवर्चोसियों का एक समाज है, इस समाज में जो अध्यक्षता करता है उसके प्रति मानव की जिज्ञासा होती ही है। इस प्रकार की अध्यक्षता में चुनौती प्रदान की है तो इसका मूल कारण तो कोई होगा।

जमदग्नि का स्वरूप

उस समय महात्मा जमदग्नि ऋषि महाराज ने कहा कि क्या तुम्हें यह प्रतीत है कि जमदग्नि किसे कहते है? उन्होंने कहा-प्रभु! जमदग्नि नाम तो सूर्य का है, वायु का भी है और जमदग्नि नाम परमपिता परमात्मा का भी है और जमदग्नि राजा को भी कहते हैं। तो महाराजा जमदग्नि बोले-कि तुम कौन-सी संज्ञा प्रदान कर सकते हो? उन्होंने कहा, प्रभु! यह हम नहीं जानते। उन्होंने कहा कि इसका उत्तर तो तुम्हें देना ही होगा।

तो उन्होंने कहा जमदग्नि तो वह कहलाता है जो अग्नि को बाह्य जगत से आंतरिक जगत में दृष्टिपात करता है। बाह्य जगत में यह अग्नि दाह को प्राप्त हो रही है जैसे यज्ञशाला में अग्नि प्रदीप्त हो रही है। यजमान यज्ञशाला में अग्नि को प्रदीप्त करता है और अपनी देवी से कहता है कि हे देवी! आओ, हम इस अग्नि का आह्वान पूजन करना चाहते है। पूजन का अभिप्राय यह है कि उसको हम प्रदीप्त करना चाहते हैं।

जमदग्नि स्वरूप आत्मा

तो मुनिवरो! देखो, वे दोनों अग्नि का चयन करते हैं और अग्नि जब प्रदीप्त होती है, समिधाओं के सन्निधान मात्र से, उनका जब चयन होता है और साकल्य उसमें प्रदान किया जाता है तो वह साकल्य सूक्ष्म बनकर के

संसार के कल्याणार्थ बना रहता है, इसी प्रकार जो अग्नि का चयन करने वाला है, बाह्य जगत की अग्नि को वह अपने में धारण करता है, अपने में उसी प्रकार की अग्नि का चयन करता है। वह आत्मा को ब्रह्म की छाया में ले जाना चाहता है। उस आत्मा को जमदग्नि कहा जाता है।

जमदग्नि स्वरूप राजा

सूर्य भी जमदग्नि कहलाता है। सूर्य, बाह्य में और आन्तरिकता में दोनों में एक-सा रहता है, उसे जमदग्नि कहते है। वह राजा जमदग्नि होता है जिस राजा के यहाँ प्रजा में राजा अपने में कोई प्रतिद्वन्द्व नहीं स्वीकार कर रहा है। प्रजा को कर्त्तव्यवाद में लाता है। उसमें लाने का प्रयास करता है, जब प्रजा कर्त्तव्यवाद में परिणत हो जाती है, गृह-गृह में सुगन्धि आने लगती है, विचारों की सुगन्धि, साकल्य की सुगन्धि, जो अश्वमेध याग करने वाला राजा होता है, तो उस राजा का नाम जमदग्नि कहलाता है। हे भगवन्! परमपिता परमात्मा इसलिए जमदग्नि कहलाता है क्योंकि वह सर्वत्र ब्रह्माण्ड को अपने में धारण किए रहता है।

जमदग्नि स्वरूप माता

बेटा! देखो, माता का नाम भी जमदग्नि कहलाता है। कौन-सी माता? जो माता अपने गर्भस्थल में बिन्दु के प्रवेश होने से लेकर के पांच वर्ष तक बाल्य को जो चाहती है वह बना देती है और माता अपने में सजातीय बन जाती है, माता के गर्भस्थल में एक बिन्दु का प्रवेश हुआ। बिन्दु में शिशु है और शिशु की रक्षा करने वाले देवता है, जैसे चन्द्रमा, सूर्य इत्यादि यह पंच महाभूत देवता बन करके माता के गर्भ में उसकी रक्षा करते हैं और जो माता इन देवताओं को जान करके इनके गुणों को अपने में गुणावधान करके गर्भ वाला जो शिशु है उसमें वह प्रवेश करा देती है। तो माता जब बाह्य जगत में लाती है पुत्र को, तो उस समय लोरियों का पान कराती हुई लोरियों के दुग्ध् में भी ज्ञान की तरंगों को परिणत कर देती है उस माता का नाम जमदग्नि कहा जाता है।

मुनिवरो! देखो, महर्षि प्रवाहण और महर्षि दालभ्य ने जब इस प्रकार की चर्चाएँ की तो उन्होंने कहा प्रभु! हम यह जानना चाहते हैं, इस सभा में बहुत से जमदग्नि इस प्रकार के हैं, लेकिन आपको ही ब्रह्मवेत्ताओं की चुनौती की प्रधानता क्यों प्रदान की हैं?

ब्रह्मज्ञानी जमदग्नि

तो महात्मा जमदग्नि बोले कि तुम कुछ भूल कर गए हो। तुम अपने में कुछ क्षीणता ला गए हो। जमदग्नि उसे भी कहते हैं जो ब्रह्मज्ञान को जानकर के संसार में क्रिया में परिणत हो जाता हैं। जहाँ तक ऋषिओं की उपाधि की प्रधानता है उसमें भी तुम्हारे में कोई अव्रह बन गया है। महात्मा प्रवाहण और दालभ्य ने कहा-हो सकता है, हमसे किसी प्रकार की त्रुटि हो शब्दों में। हमेशा नहीं, क्योंकि हम सर्वाघ वाक्यों को उदबुद्धता में गा रहे हैं केवल यही कि हम अपनी शंकाओं का निवारण करना चाहते थे। हमारी शंका का निवारण हो गया है। हमें कोई विवाद नहीं, केवल एक जिज्ञासा है। हम आपका नामोकरण बहुत परम्परा से श्रवण करते चले आए हैं। दोनों ऋषिवर मौन होकर अपने आसन पर विद्यमान हो गए।

सभा की उद्देश्यता

तो महात्मा जमदग्नि ने ब्रह्मवेत्ताओं की सभा में कहा, हे ब्रह्मवेत्ताओं! तुम क्यों एकत्रित हुए हो यहां? तो ब्रह्मवेत्ताओं ने कहा-प्रभु! हम नहीं जानते हम क्यों एकत्रित हुए हैं? हमारा एकत्रित होना महत्वदायक है क्योंकि अयोध्या में ऐसी सभा अब तक कहीं हमने श्रवण नहीं की। अतीत का काल भी चला गया, मनुवंश भी यहां रहा है, परन्तु ब्रह्मवेत्ताओं का इतना विशाल समूह एकत्रित नहीं हुआ है। इसके मूल को हम जानना चाहते है। तो

तप का महत्व

महात्मा जमदग्नि बोले, कहो महाराजा भरत! तुम्हारा निमन्त्रण पहुँचा और तुमने इस सभा का आयोजन किया। तो इसके मूल में क्या है?

महाराजा भरत और शत्रुघ्न का आग्रह

तो महाराजा भरत और शत्रुघ्न दोनों ने एक स्वर में कहा, प्रभु! आप यह जानते हैं कि हम अनाथ हैं, बिना माता-पिता के हैं, हमारा राष्ट्र भी बिना माता-पिता के हमें प्रतीत होता हैं। कहते हैं कि परमपिता परमात्मा जो है वह अनाथों के नाथ कहलाते हैं इस वाक्य को तो हम स्वीकार करते हैं। परन्तु भौतिकवाद में, व्यवहार में हमारी अयोध्या अनाथों की अनाथ है। उन्होंने महात्मा जमदग्नि कहाँ-कैसे?

महाराजा भरत का निवेदन

उन्होंने कहा-भगवन्! हमारे वंश की जो साहित्यिक चर्चाएँ हैं वह बड़ी विचित्र रही है। हमारा जो यह वंश है यह राजा सगर से ले करके, हरिश्चन्द्र से लेकर के यह सगर वंश कहलाता था। महाराजा दिलीप से लेकर के जो हमारे महापिता महाराजा दिलीप हुए हैं यह दिलीप राष्ट्र के नामों से वर्णन किया गया। परन्तु हमारे जो महापिता हुए रघु जी, रघु जी को लेकर के रघुवंश में इसकी विवेचना होने लगी है। यह रघुवंश बन गया है। जब रघु चले गए, हमारे महापिता चले गए और हमारे पिता महाराजा दशरथ भी चले गए। हमारा जो अयोध्या राष्ट्र है इस समय अनाथ आभा में हमें दृष्टिपात आ रहा हैं। महात्मा जमदग्नि बोले, यह कैसे माना जाए?

उन्होंने कहा प्रभु! राम चौदह वर्ष को वन चले गए। वनों में अपने जीवन को व्यतीत किया। इसको हम दूरिता में दृष्टिपात नहीं करते हैं, क्योंकि इन्होंने समाज का जितना भी कल्याण किया, राष्ट्र में जितनी भी महानता लाने का इन्होंने प्रयास किया है। इस समय राष्ट्र में कोई हिंसक प्राणी नहीं है, राष्ट्र के, प्रत्येक गृह में देवयाग होते है, देव-पूजन होता है, वेदों की ध्वनियाँ होती हैं, विद्या पूर्ण-रूपेण है, बुद्धिजीवी प्राणी बहुत है, नाना प्रकार के यागों की रचना करने वाले नाना पंडित, ऋषि भी यहाँ हैं।

भगवान राम ने द्वितीय राष्ट्रों में भी अपनी ससंकृति का प्रचार किया है। राजा रावण जैसे आततायी को इन्होंने मृत्यु की आभा में परिणत कर दिए हैं, उसके पश्चात अब जब यह अयोध्या आए, तो इनके विचारों में यह है, कि राजा रावण के राष्ट्र को ऊँचा बनाने के लिए जो हिंसा मेरे जीवन में आयी है, मैं हिसा के परमाणुओं को नष्ट करना चाहता हूँ। मेरे अन्तःकरण की प्रतिभा में हिंसा के जो भाव आ गए क्योंकि राजा रावण से मैंने युद्ध किया है तो वह भी मेरा रजोगुण बन गया है। यदि मैंने मिथ्या उच्चारण किया है तो वह भी मृत्यु के मूल में, जो जामवन्त जी और हनुमान जी ने क्रियाकलाप किया है, यत्रों को जाना है, वह भी एक प्रकार की हिंसा है, मैं इन हिंसक परमाणुओं को जब तक चित्त के मण्डल से शान्त नहीं कर लूँगा तब तक मैं राष्ट्र का अधिकारी नहीं हूँ।

यह भगवान राम का कथन है कि मैंने बाली जैसां को नष्ट किया और मिथ्या ही एक-दूसरे के अपवाद में नष्ट किया। उसमें मेरा स्वार्थ था। उस स्वार्थ के ही कारण मेरे हृदय में नाना प्रकार के स्वार्थ की परतें आयी है, नाना प्रकार के हिंसा के विचार मेरे अन्तःकरण में प्रवेश कर चुके हैं। जब तक वह नहीं निकल सकेंगे तब तक मैं राष्ट्र का अधिकारी नहीं हूँ, क्योंकि राजा वही बनता है, बुद्धिमान उसी राजा का निर्वाचन करते हैं जिसके हृदय में महत्ता होती है, जो अपनी इन्द्रियों पर अपने चित्त पर अनुशासन करने वाला हो। जब तक मैं चित्त की प्रवृत्तियों पर अनुशासन नहीं करूँगा तब तक मैं अयोध्या के राष्ट्र का अधिकारी नहीं हूँ।

हे भगवन्! राम यह कहते हैं कि अब वे तप को चले जाएँगे। हमारा यह अयोध्या राष्ट्र पुनः अनाथ बनने जा रहा है। मेरी इच्छा यह है कि राम को इस प्रकार की शिक्षा, इस प्रकार के ऋषि-मुनिओं के तपे हुए उपदेश

होने चाहिए जिससे राम इस अयोध्या के राष्ट्र को अपनाएँ। मैं तपस्वी बनूँ, और हमारा यह अयोध्या राष्ट्र तप का पालना करने वाला बने।

बेटा! देखो, जब भरत और शत्रुघ्न ने यह वाक्य प्रकट किया तो महात्मा जमदग्नि ने इस वाक्य को स्वीकार कर लिया। उन्होंने कहा वाक्य तो तुम्हारा यथार्थ है। परन्तु हम राम के भी तो उद्गार को स्वीकार कर सकेंगे। भरत और शत्रुघ्न दोनों अपनी मुद्रा में मुद्रित होकर के शान्त हो गए। भगवान राम से महात्मा जमदग्नि ने यह कहा-कहो, राम! तुम्हारा क्या विचार है? तुम्हारे विचार में कौन सी विडम्बना आयी कि अयोध्या के राष्ट्र को भोगने में असमर्थ हो, इसके कर्त्तव्यवाद पालने में असमर्थ हो गये हो।

भगवान राम उवाच

भगवान राम उपस्थित होकर के सब ऋषियों को नमस्कार करके बोले, भगवन्! आप तो महान् तपस्वी हैं, मैं आपके समीप कोई वाक्य उच्चारण करने को तत्पर नहीं हूँ, न मेरा इतना सामर्थ्य है कि मैं तपस्वियों के समीप, जिनका अन्तःकरण अग्नि के तुल्य बन गया है, जिनका विचार विद्युत् बन गया है, जिनका शरीर यज्ञशाला बन गयी है, जिनका चित्त का मण्डल संस्कारों से विहीन हो गया है आज मैं उनके समीप कोई वाक्य तो उच्चारण करने के योग्य नहीं हूँ। परन्तु आपने यह प्रश्न किया है, तुम्हें क्या विडम्बना हुई है? तो मैं उसका उत्तर दिए देता हूँ, संक्षेप में।

अन्तःकरण में रजोगुण के परमाणु

मुनिवरो! देखो, मुझे कुछ ऐसा स्मरण है उस सभा का कि भगवान राम उपस्थित होकर के बोले हे ऋषिवर! मेरे अन्तःकरण को आप अपनी यौगिक प्रतिक्रिया से दृष्टिपात करें। मेरे अन्तःकरण में यदि रजोगुण के परमाणु बलवती हैं तो मुझे तपस्या के लिए आज्ञा दे दीजिए और यदि मेरे हृदय में सात्विक गुण विशेष हैं तो मुझे इसके पालन के लिए बाध्य कर दीजिए।

ऋषि मुनियों की सभा शान्त हो गयी। ऐसी हो गयी जैसे योग में, समाधि में ऋषि अपने को सांत्वना को प्राप्त हो जाता है। महात्मा जमदग्नि बोले हे राम! यह तो वाक्य तुम्हारा अपवाद में प्रतीत होता है।

सतोगुणी राजा

राम ने कहा भगवन्! मैं अपवाद करने के योग्य नहीं हूँ। क्योंकि मैंने प्रभु की जैसी-जैसी प्रेरणा होती रही साम्राज्य का कौतुक अशुद्ध बन गया क्योंकि जो अपराध किए हैं वह अन्तःकरण में मेरे निहित हैं। मैं सतोगुणी भाव अपने में दृष्टिपात नहीं कर रहा हूँ और बिना सतोगुण के राजा को राष्ट्र का पालन नहीं करना चाहिए। क्योंकि पालना तो वही करता है जिसमें सतोगुण की विशिष्ठता आ जाती है। माता अपने बालक का उसी काल में पालन करती है जब माता के हृदय में सतोगुण प्रतिष्ठित हो जाते हैं। माता के हृदय में यदि सतोगुण नहीं होंगे तो वह बाल्क का पालन नहीं कर सकती, रजोगुण तो उसमें अपवाद में रहता हैं, रजोगुण के अपवाद में भी सतोगुण माता के गर्भ में निहित रहता है।

भगवान राम के बाल्यकाल का प्रसंग

बेटा! देखो, राम ने कहा मैं एक समय बाल्यकाल में जब माता कौशल्या के आंगन में क्रीड़ा करता था तो एक समय, प्रातःकालीन माता याग कर रही थी। आहुति के लिए उन्होंने मिष्ठान, मधु -पदार्थ, कुछ स्थिर किए थे। जो माता के पिछले भाग में विद्यमान था। मैं कहीं से क्रीड़ा करके आया। मैंने माता की बिना आज्ञा के उस मधु पदार्थ को पान कर लिया जब मधु पदार्थ को पान किया तो माता ने विचारा यह क्या हो गया? यह तो असंगनी

हो गया। उस समय मुझे रजोगुण में दण्डित किया। उन्होंने कहा राम! तुम्हें लज्जा नहीं आती तुम अपने में व्रती नहीं बने हो। मैं देवताओं का याग कर रही हूँ, मैं देवपूजा में निहित हूँ। तुमने यह क्या किया?

मैं माता के चरणों में ओत-प्रोत हो गया, मेरा बाल्य काल था। कुछ मग्न होकर के माता ने रजोगुण के भाव को त्याग करके मुझे अपने में आलिंगन कर लिया। माता के रजोगुण में भी तमोगुण की मात्रा होती है और दोनों मात्राओं के समाप्त होने पर सतोगुण की मात्रा विशेष बलवती हो जाती है।

करूणाभाव में राजा

तो हे ऋषिवर! इसी प्रकार राजा होना चाहिए, राजा के हृदय में जब तक करूणा नहीं होगी और करूणा के रूप में भी न्याय में सतोगुण की प्रतिभा नहीं होगी। तब तक राज्य का अधिकार राजा नहीं कर सकता।

महात्मा जमदग्नि बोले-हे राम! तुम यह स्वीकार कर रहे हो कि मेरे हृदय में तमोगुण और रजोगुण विशेष हैं। उन्होंने कहा प्रभु! मेरे हृदय में रजोगुण की मात्रा विशेष है और रजोगुण की मात्रा वाला जो प्राणी होता है वह आगे चलकर के विलासी बन सकता है, जो सतोगुण वाला प्राणी होता है, वह रजोगुण में तो प्रवेश कर सकता है परन्तु वह तमोगुण में नहीं जा सकता। इसी प्रकार वह पुनःतपस्या में परिणत हो सकता है।

सतोगुणी भाव

तो भगवन्! मेरे हृदय में रजोगुण की मात्रा है और मैं रजोगुण की मात्रा को जब तक शान्त नहीं करूँगा। तब तक मैं इसका अधिकारी नहीं हूँ। हमारे जो पूर्वज थे, हमारे महापिता रघु की गाथाएँ तुमने श्रवण की होगी। तुमने दृष्टिपात भी किया होगा, महाराजा रघु को, हमारे महापिता थे, अपने राष्ट्र में से द्रव्य, जब ऋषि को, ब्रह्मचारी को दक्षिणा न प्रदान कर सके, तो महाराजा कुबेर से लाकर के दिया तो वह सतोगुणी भाव माता-पिता का कहलाता है। इसी प्रकार वह राजा का सतोगुणी भाव है। मैं अपने सतोगुण को लाना चाहता हूँ।

देखो, बेटा! विचारों से ऋषि-मुनि अपने में शान्त होने लगे। ऋषिओं ने कहा, अब तुम क्या उत्तर दे सकोगें? इसमें नाना प्रकार का वाद-विवाद नहीं हुआ। महात्मा जमदग्नि शान्त हो गए और कहा रात्रि को यहीं विश्राम किया जाएगा और रात्रि के समय जो भी समाधिष्ठ होने वाले हैं, जो भी अन्तःकरण को दृष्टिपात करने वाले हैं, वह अपने-अपने अनुभव की चर्चा प्रकट करेंगे क्योंकि राम का यह कथन है कि मेरा जो चित्त का मण्डल है, वह बाह्य मण्डल है और आन्तरिक मण्डल है। मानव के दो प्रकार के चित्त के मण्डल होते है यह प्रत्येक मानव जानता है। बाह्य चित्त का मण्डल और आन्तरिक चित्त का मण्डल दोनों का समन्वय करके जब तक ऋषि-मुनि तुम अपने में दृष्टिपात नहीं करोंगे। तब तक राम के प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकोगे।

मेरे प्यारे! देखो, महाराजा भरत इत्यादिओं ने वह वाक्य स्वीकार कर लिया। ऋषि-मुनि अपने में, जो उनके भिन्न-भिन्न कक्ष बने हुए थे, सायंकाल तक उनकी नाना प्रकार की विचार धाराएँ चलती रही। अन्त में परिणाम यह हुआ कि वह अपने-अपने कक्षों में विद्यमान हो गए। इससे आगे की शेष चर्चाएँ मैं कल प्रकट करुँगा। आज का विचार अब यही समाप्त होने जा रहा है।

आज के विचार का अभिप्राय क्या है? मेरे प्यारे! ऋषि-मुनियों के विचार कितने मार्मिक होते हैं, कितने समाज के हित-प्रदायक होते हैं। अब यह चर्चाएँ कल प्रकट करेंगे कि राम के हृदय की अन्तःकरण में अपनी समाधि के द्वारा जैसे योगी ब्रह्माण्ड को अपनी समाधि में लघु मस्तिष्क में दृष्टिपात करता हैं इसी प्रकार अन्तःकरण और चित्त के मण्डल को मानव कैसे दृष्टिपात करता है? यह चर्चाएँ तुम्हें कल प्रकट करूँगा। आज का वाक्य समाप्त। अब वेदों का पठन-पाठन होगा। 22-10-85ग्राम-माछरा, मेरठ

९ तपस्विता 1985 10 28

जीते रहो, देखो, मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद-मंत्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद मंत्रो का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन किया जाता है क्योंकि वे परमपिता परमात्मा महिमावादी हैं और जितना भी ये जड़ जगत अथवा चैतन्य जगत हमें दृष्टिपात आ रहा है। उस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के मूल में प्रायः वह मेरा देव दृष्टिपात आ रहा है।

परमात्मा का आयतन

आज हम उस परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन करते चले जाए क्योंकि वह परमपिता परमात्मा महान और विज्ञानमयी स्वरुप माने गये हैं। वह यज्ञोमयी स्वरुप हैं। याग उस परमपिता परमात्मा का आयतन माना गया है। जैसे विज्ञान उस परमपिता परमात्मा का आयतन है इसी प्रकार यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड जो हमें दृष्टिपात आ रहा है यह उस परमपिता परमात्मा का एक आयतन माना गया है अथवा वह उसमें वास करते रहते हैं।

चेतना में चेतना का समन्वय

तो मुनिवरो! देखो, हमारा जो वेद का मंत्र है वह उस परमपिता परमात्मा की गाथा गाता रहता है। जो परमपिता परमात्मा इस संसार का नियंता है अथवा निर्माण करने वाला है, हम उस परमपिता परमात्मा की महती में सदैव रत रहें और उसको जानने का प्रयास करें क्योंकि हमारा वेदमंत्र, नाना प्रकार के यागों की विवेचना करता रहता है। आओ मेरे प्यारे! मैं तुम्हें कोई विशेष चर्चा तो प्रगट नहीं करुँगा, केवल सूक्ष्म-सा परिचय कराने के लिए प्रायः हम आये हैं और परिचय कराना हमारा कर्त्तव्य है क्योंकि प्रत्येक मानव संसार में परिचय चाहता है। मैं उस परमपिता परमात्मा की जो अनुपम मनोनीतता जो प्रायः हृदयों में नमन करती रहती है उस महान् चेतना में सदैव रत रहें और उस चेतना में अपनी चेतना का समन्वय करते हुए उस परमपिता परमात्मा को हम अपनी मानवीयता में ही दृष्टिपात करते रहें।

तो मैं तुम्हें उसी क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ जहाँ हम अपने विचारों को प्रायः समापन करते रहते हैं, वही से उनका प्रारम्भ भी करते हैं। मैने तुम्हें कई काल में वर्णन करते हुए कहा कि हमारे यहाँ नाना प्रकार की पूजा परम्परागतों से मानी गई है। हमारे यहाँ राष्ट्रीय क्षेत्रों में क्या, सामाजिक क्षेत्रों में क्या, भिन्न-भिन्न प्रकार की पूजा का वर्णन प्रायः होता रहा है। हमारे यहाँ जितना भी क्षत्रिय समाज है उनमें भी प्रायः भिन्न-भिन्न प्रकार की पूजा का और अपने विचार अस्त्रों में परिणत होते रहे हैं। तो आज मैं उस पूजा के सम्बन्ध में तो विशेष तुम्हें चर्चा देना नहीं चाहता हूँ।

केवल विचार विनिमय क्या? आज मैं तुम्हें उसी काल में, उसी ऋषि के आश्रम में ले जाना चाहता हूँ जहाँ ब्रह्मवाद की प्रायः चर्चाएँ होती रहती हैं। जहाँ ब्रह्म चिन्तन और मानवीय दर्शनों की चर्चाएँ प्रायः हृदयाघम में हो करके मानव के जीवन को महान् और पवित्र बनाती रही हैं। तो मेरे प्यारे! मैं उसी भगवान राम के तपस्या काल के जीवन में जाना चाहता हूँ जहाँ मेरे प्यारे! भगवान राम का देखो, लंका को विजय करने के पश्चात अयोध्या में आगमन हुआ। नाना ऋषि मुनियों की सभाएँ हुई और सभा में उनके जीवन के अभ्युदय के लिए नाना ऋषि मुनियों ने अपने उद्गार प्रगट किए और यही कहा कि तुम राष्ट्र का पालन करो।

भगवान राम का तप के लिए गमन

तप का महत्व

परन्तु भगवान राम का जीवन एक महान् तपस्वी जीवन था। उस जीवन में भी तपस्या की प्रतिभा में प्रायः वह रत रहे। जब ऋषि मुनियों ने आज्ञा दी कि जाओ, तुम तप करने के लिए जाओ। लंका को विजय करने के पश्चात, अयोध्या में आने के पश्चात 12 वर्ष के लिए राम तप के लिए चले गये। मुनिवरो! देखो, तप के लिए ऋषि मुनियों ने आज्ञा दी, अब राम यह विचारने लगे कि मैंने तप की विवेचना तो की है और तप शब्दों का उद्गार भी मैंने प्रगट किया है। परन्तु ऋषि मुनियों ने मुझे आज्ञा दी हैं अब मैं तप करने के लिए तो जाऊँ परन्तु तप है क्या? विचारने लगे कि तप किसे कहते हैं?

तप

तो भगवान राम ने अपने में यह विचारा कि अपने अतःकरण को अघ और उपाघों से जानने का नाम तप शब्द कहा जाता है। जो हमारा चित्त का मंडल है अथवा हमारा जो हृदय हैं उस हृदय का जो समन्वय है वह परमपिता परमात्मा के हृदय से अगम्य बन जाता है। तो हमें अपने हृदय को विचित्र बनाना है और हृदय में जो नाना प्रकार का जो चित्त का मंडल है उस चित्त के मंडल को निहारना है और दृष्टिपात करना है।

भगवान राम वशिष्ठ मुनि के आश्रम में

अब मुनिवरो! देखो, राम ने विचारा कि इस प्रकार का क्रियाकलाप कहाँ हो सकता है? भगवान राम भ्रमण करते हुए महर्षि वशिष्ठ मुनि के आश्रम में पहुँचे। महात्मा वशिष्ठ मुनि महाराज ने राम का स्वागत किया। उन्होंने कहा-आओ, भगवन्! विराजो। वे विराजमान हो गये। वह विचार विनिमय करने लगे। वह जो दिवस था वह पूर्णिमा का दिवस था। पूर्णिमा के दिवस भगवान राम ने उनसे यह प्रश्न किया कि भगवन् आज पूर्णिमा का दिवस है। सायं काल का समय है, चन्द्रमा अपनी समस्त कलाओं से युक्त है। हे प्रभु! यह जो चन्द्रमा है यह चन्द्रमा क्या है? जो अपनी सम्पन्न कलाओं से पूर्णिमा के दिवस यह पूर्ण रुपेण रहता है। यह चन्द्रमा कौन है, क्या है?

चन्द्रमा

तो महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने न्यौदा में से मंत्रों का उद्गार प्रगट किया और उन्होंने कहा कि हे राम! यह जो चन्द्रमा है, यह सोम है। हे राम! यह जो चन्द्रमा है यह अमृत की वृष्टि करने वाला है। यह जो चन्द्रमा है इसका समन्वय सूर्य से रहता है और चन्द्रमाँ की षोडश कला कहलाती हैं। इन षोडश कलाओं से यह युक्त कहलाता है। प्रतिपदा से लेकर के और पूर्णिमा के दिवस तक इसकी कला बलवती होती रहती है। प्रतिपदा से ले करके, द्विपदा, तृतीयपदा, चतुष्पदा इसी प्रकार यह पूर्णोषुकला बन जाती है, तो पूर्णोषु कलाओं से युक्त होने वाला यह चन्द्रमा है। चन्द्रमा अपनी सम्पन्न कलाओं से युक्त है।

अमावस्या को याग

इस दिवस मुनिवरो! देखो, यजमान क्या प्रत्येक गृह में मेरी प्यारी माता, पितरजन पूर्णिमा के दिवस मुनिवरो! देखो, उपवास की प्रतिक्रिया अपने हृदय में धारण करके याग की रचना करते थे। पूर्णिमा और अमावस्या को याग करने का हमारे ऋषि मुनियों ने वर्णन किया है। हमारे यहाँ वेद की आख्यायिका में जब पठन-पाठन की प्रतिक्रियायें आती हैं तो पठन -पाठन में वेद-मंत्र कहता है 'मां ब्रहे वाक् अग्निः वंचनं ब्रह्म वाचो देवाः'। मुनिवरो! देखो, वेद की आख्यायिका कहती है कि पूर्णिमा का जो दिवस है, पूर्णिमा के दिवस चन्द्रमा अपनी सम्पन्न कलाओं से युक्त होता है और इस दिवस यजमान पति-पत्नी और प्रत्येक ब्रह्मचारी द्वारा अमावस्या को याग का प्रायः वर्णन आता रहा। महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने अपनी लेखनी में बद्ध करते हुए कुछ ऐसा कहा है।

भावना में संकल्प

तप का महत्व

तो मेरे प्यारे! देखो, यह 'ब्रह्मसम्भूति ब्रह्मा यागाः' पूर्णिमा का जो दिवस है वह इसलिए याग कहा है क्योंकि वह अपनी सम्पन्न कलाओं से युक्त है। आज कोई भी मानव अपने में यह न जान ले कि मैं अपनी कलाओं से युक्त हो गया हूँ। मैं द्रव्यपति बन गया हूँ, मानो देखो, मेरे हृदय में किसी प्रकार का अभिमान न आ जाए। मैं निर-अभिमान हो करके अपने द्रव्य का सदुपयोग करता रहूँ। उसका अपने में, भोग में परिणत करता हुआ और वह द्रव्य का सदुपयोग करता रहूँ ऐसी मनोनीत मानव की भावना होनी चहिए। भावना में ही संकल्प होता है। मेरे पुत्रों! देखो, वह जब यह विचारता है कि मैं अभिमानी न बन जाऊँ, मैं अपनी सम्पन्न कलाओं से युक्त बन करके अपने जीवन में एक प्रकाश को लाना चाहता हूँ।

तो मेरे प्यारे! देखो, वह याग करते थे 'यागां भविते लोकाम्'। वशिष्ठ मुनि बोले हे राम! इसलिए पूर्णेषु में यागों का बड़ा वर्णन आता रहता है। वैदिक-साहित्य में विशेष वर्णन है। तुम्हें यह प्रतीत होगा कि इन यागों का चलन परम्परागतों से बड़ा विचित्र माना गया है। आज मैं याग के सम्बन्ध में कोई विवेचना देना नहीं चाहता हूँ। परन्तु राम ने यह कहा कि प्रभु! चन्द्रमा के तो आपने बहुत विशेषणों का वर्णन किया है। परन्तु मैं जानना चाहता हूँ कि ओर क्या विशेषण हैं इनके?

सोम रूप चन्द्रमा

उन्होंने कहा कि यह चन्द्रमा सोम कहलाता है। यह सोम के देने वाला है, सोम की वृष्टि करने वाला है। माता के गर्भस्थल में जब शिशु होता है तो अमृतमयी वृष्टि कराने वाला यह चन्द्रमा है। यह सोम कहलाता है। कृषक की भूमि में जब बीज की स्थापना कर देता है तो वहाँ भी यह अमृत की स्थापना करने वाला है। अन्नाद उपजने लगती है जितना भी स्थावर जगत है या अण्डज जगत है, जितना भी स्वेदज है, जघम है उन चारों प्रकार की जो सृष्टियाँ है, उन सर्वस्व सृष्टियों को यह चन्द्रमा अमृत देता रहता है। अमृतमयी धारा में रत होता हुआ बेटा! यह चन्द्रमा सोम कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने कहा कि यह चन्द्रमा ही सोम कहलाता है परन्तु ये चन्द्रमा अपने में देखो, पूर्ण कलाओं से युक्त होता रहता है।

सृष्टि के मूल में चन्द्रमा

महर्षि वशिष्ठ मुनि वोले कि हे राम! यह जो सोम है इसको सोम क्यों कहते है, क्योंकि यह सोम की वृष्टि करता है, यह अमृत प्रदान करता रहता है, नाना प्रकार की जो यह सृष्टि हमें दृष्टिपात आ रही है इस सर्वस्व सृष्टि के मूल में यह चन्द्रमा है। एक चन्द्रमा नहीं, दो नहीं, अनन्त चन्द्रमा हैं। मुझे कुछ ऐसा स्मरण आता रहता है कि यह जो नाना प्रकार के चन्द्रमा हैं, यह जैसे पृथ्वी के लिये एक चन्द्रमा है, शनि के लिए 72 बहत्तर चन्द्रमा हैं। मुनिवरो! देखो सोमवृतिका मंडल के लिए 285 चन्द्रमा हैं।

अनन्त चन्द्रमा

तो मुनिवरो! देखो, मैं यह तो वर्णन नहीं करूँगा परन्तु केवल यह कि एक चन्द्रमा नहीं अनन्त चन्द्रमा कहलाते हैं, क्योंकि जितना इनको सोम दे सकता है उतना ही वह चन्द्रमा अपनी आभा में युक्त रहता है।

योगी द्वारा अमृतपान

तो मेरे प्यारे! देखो, राम ने यह वाक् श्रवण किया। उन्होंने कहा प्रभु! चन्द्रमा का तो ओर भी विशेषण हैं। उन्होंने कहा चन्द्रमा का ओर भी विशेषण हैं। चन्द्रमा कहते हैं अमृत को। परन्तु योगीजन, साधक जब अपने में साधना करता हुआ ब्रह्मरन्ध्र में अपने प्राणों को और मनस्तव को ले जाता है, तो वहाँ ब्रह्मरन्ध्र में इसकी गतियाँ होती हैं और वहाँ से ही अमृत बहने लगता है उस सोम को यह रसना के अग्रभाग से पान कहता है। तो मेरे

प्यारे! देखो, यह चन्द्रमा उस काल में भी सोम की वृष्टि करने वाला है।

मेरे प्यारे! देखो, वशिष्ठ मुनि बोले-हे राम! जब यजमान अपनी यज्ञशाला में याग करता है, याग करता हुआ परमाणु अन्तरिक्ष में गति करते हैं। वह अन्तरिक्ष में क्या, चन्द्रमा की कान्ति में जब रत हो जाते हैं तो वह परमाणु अमृत में ही देखो, अपने में सिंचन करने लगता है। वे आग्नेय परमाणु बनते हैं, अमृतमयी बन करके अपने को पान करने लगते हैं।

शुक्ल पक्ष और कृष्णा पक्ष

इसी प्रकार हमारे यहाँ शुक्लपक्ष और कृष्णापक्ष दोनों का वर्णन आता हैं। हमारे यहाँ कृष्णापक्ष कहते हैं अंधकार को और शुक्लपक्ष कहते हैं प्रकाश को। अमावस्या से पूर्णिमा तक यह शुक्लपक्ष कहलाता है और देखो, पूर्णिमा से लेकर के अमावस्या तक यह कृष्णापक्ष कहलाता है। यह दोनों पक्ष कहलाते हैं। मेरे प्यारे! यहाँ बहुत से राजा महापुरूष ऐसे हुए हैं जिन्होंने अपने शरीरों को शुक्लपक्ष में त्यागने का प्रयास किया है,'सम्भूति ब्रह्मवाचो लोकाम्'

मेरे प्यारे! देखो, वशिष्ठ आश्रम में महर्षि सम्भूति ऋषि महाराज रहते थे। तो सम्भूति ऋषि महाराज जब अपने शरीर को त्यागने लगे तो शरीर को त्यागते समय उन्हांने यह कहा - कि मैं, जब शुक्ल-पक्ष आ जायेगा तो शरीर को त्यागूँगा।

परन्तु देखो, इसके दो पक्ष बन जाते हैं राम! एक पक्ष तो अमावस्या और पूर्णिमा का मध्य है। इसको हमारे यहाँ शुक्लपक्ष कहते हैं और एक शुक्लपक्ष वह कहलाता है जब मानव के अज्ञान छाया हुआ हो। वह ज्ञान में जब तक प्रवेश नहीं कर जाता तब तक वह अपने शरीर को नहीं त्यागता। आत्मज्ञान होना चाहिए। शरीर को त्यागने के लिए समय आ गया है। परन्तु वह अपनी संकल्प शक्ति से कहता है कि नहीं, जब तक शुक्लपक्ष नहीं आएगा, जब तक मुझे ब्रह्मज्ञान नहीं होगा, में मानवीय प्रवृत्ति नहीं होगी तब तक मैं शरीर को नहीं त्यागूँगा। सम्भूति ऋषि महाराज इसी प्रकार अपना तप करते रहते थे।

माता मदालसा के पुत्र

मानो देखो, उन्होंने कहा राम! मुझे ऐसा प्रतीत है, माता मदालसा जब अपने शरीर को त्यागने लगीं, तो उनके चारों राजकुमार उनके आंगन में विद्यमान हैं महर्षि प्रवाहण, महर्षि शिलक, महर्षि दालम्य और मुनिवरो! देखो, रेनवृचीक। मेरे प्यारे! चारों पुत्र उनके समीप विधमान हैं महर्षि प्रवाहण ने यह कहा कि माता! अब तुम कहाँ जा रही हो? उन्होंने कहा हे पुत्र! यह तो मुझे प्रतीत नहीं कि मैं कहाँ जा रही हूँ, परन्तु मैं अपने शरीर को शुक्लपक्ष में त्यागना चाहती हूँ। उन्होंने कहा - हे मातेश्वरी! तुम्हारा जीवन जो बाल्यकाल से हो शुक्लपक्ष कहलाता है आज शरीर को त्यागते समय तुम शुक्लपक्ष की कामना क्यों कर रही हो? उन्होंने कहा - हे पुत्र? मैं इसलिए कामना कर रही हूँ क्योंकि मैं शुक्लपक्ष में जाना चाहती हूँ जिससे मेरा जीवन प्रकाशमयी बन जाए। मेरे प्यारे! देखो, महर्षि शिलक बोले - कि माता तुम तो प्रायः बाल्यकाल से ही हमें ब्रह्मज्ञान देती रही हो। ब्रह्मज्ञान का वर्णन करा रही हो, आज भी तुम ब्रह्मज्ञान का वर्णन कराती रही हो, परन्तु हम यह जानना चाहते हैं कि अब तुम्हरा वास कहाँ होगा?

उन्होंने कहा - हे पुत्रों! मैं नहीं जानती कि यह मेरा शरीर कहाँ जायेगा, परन्तु मैं इतना जानती हूँ कि मैं शुक्लपक्ष में जाना चाहती हूँ। जिससे मुझे प्रकाश ही प्रकाश प्राप्त हो। मेरे पुत्रों! प्रवाहण बोले - हे माता! तुम कौन से प्रकाश को चाहती हो? उन्होंने कहा - कि मैं आत्म प्रकाश को चाहती हूँ। मैं उस प्रकाश को चाहती हूँ जिससे

कि वह संसार मेरे लिए उदासीन हो जाए, मेरे लिए संसार उदासीन हो जाए। मेरे प्यारे देखो, उस काल में 12 वर्ष से ब्रह्मचारी देखो, जो राजा बनने वाला था वह पति के समीप विद्यमान हैं परन्तु तीनों पुत्र, जो ब्रह्मवेत्ता बना दिए थे वे उनके समीप विद्यमान हैं। परन्तु देखो शरीर को त्यागने के लिए जब ब्रह्मचारियों ने प्रश्न किया तो पंन्द्रह दिवस तक गायत्री माता की गोद में चली गई।

गायत्री

बेटा देखो, हमारे यहाँ गायत्री के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न प्रकार से वर्णन कराया। परन्तु गायत्री उसे कहते हैं प्रत्येक वेद मंत्र का नाम गायत्री कहलाता है प्रत्येक वेद का मंत्र गायत्री के छन्दों से युक्त रहता है। क्योंकि जो गाया जाता हो, जो स्वर व्यंजनो के सहित जो भी गान गाया जाता हो, उसी का नाम गायत्री कहलाता है। तो जो गाया जाता हो जो हृदय से गाता हो उसी का नाम गायत्री है। तो वह कौन गायत्री, माता गान गा रही है वेदों की न्यौदा में से गान गा रही है। गायत्री छन्दों में प्रवेश हो रही है। पंद्रह दिवस हो गये। माता के प्रत्येक श्वासों में प्रभु की प्रतिभा निहित करती हुई और जब पूर्ण अमावस्या का समय आ गया, अमावस्या आ गयी शुक्लपक्ष जब पूर्णरूपेण आ गया तो बेटा! गायत्री माता से कहती है कि माता मैं तेरी गोद में आ गई हूँ। अब मैं अपने इस शरीर को त्यागना चाहती हूँ। शरीर का त्याग, प्राणान्त करते ही शरीर को त्याग दिया।

मेरे पुत्रो देखो, विचार विनिमय क्या? जो महापुरूष होते हैं, जो मेरी पुत्री वीरांगना होती हैं, विदुषियां होती हैं वे अपने संकल्प के आधार पर अपने शरीरों का अन्त कर देती हैं। परिणाम क्या मुनिवरो! देखो, यह जीवन प्रकाश में चला जाए।

शुक्ल पक्ष का निर्माण

तो वशिष्ठ मुनि ने कहा कि हे राम! हमारे यहाँ पूर्वगाथाएँ मुझे प्रतीत होती रहती हैं। ये मेरी प्यारी माताओं की गाथाएँ हैं, इन्होंने अपने शरीरों को शुक्लपक्ष में त्यागा है। तो इसीलिए देखो, यह शुक्लपक्ष का प्रश्न आता है। राम ने कहा कि हे प्रभु! यह शुक्लपक्ष चन्द्रमा से बनता है या ज्ञान से बनता है? तो महर्षि वशिष्ठ मुनि वोले कि यह जो शुक्लपक्ष है और कृष्णपक्ष है यह अंधकार और प्रकाश से बनता है। वह अंधकार , ब्रह्मज्ञान न होना है, रात्रि छा जाए, अज्ञान आ जाए तो उसे हमारे यहाँ कृष्णपक्ष कहते हैं और जब प्रकाश आता हैं, प्रकाश में ज्ञान आ जाता है तो वही प्रकाश हमारे यहाँ बेटा! शुक्लपक्ष कहलाता है। एक पक्ष तो यह है और द्वितीय साधारण पक्ष यह माना गया है कि पूर्णिमा से लेकर के अमावस्या तक कृष्ण है और अमावस्या से पूर्णिमा तक शुक्ल कहलाता है। यह दोनों पक्ष हैं। हमारे यहाँ जो रात्रि के श्रृंगार को अपने में लय कर लेता है, वह अंधकार को अपने में धारण कर लेता है वह कृष्ण कहलाता है और कृष्ण में जो रात्रि की आभा में अंधकार को त्याग देता है।

सोम की वृष्टि

तो मेरे पुत्रो! देखो, विचार विनिमय क्या? मैं तुम्हें यह विचार देने जा रहा हूँ कि हमारे यहाँ वेद का मंत्र हमें सोम की वृष्टि करने के लिए कह रहा है। इसीलिए हमारे यहाँ देखो, चन्द्रमा हमारा सोम कहलाता है, यह प्रकाश का द्यौतक हैं, रात्रि को अपने में धारण करने वाला है, मानव को प्रकाश देने वाला। वह चन्द्रमा है।

मानो देखो, द्वितीय वेद की पोथी के आधार पर वेद्धान और विज्ञान को भी मेरे प्यारे! देखो, शुक्लपक्ष कहा जाता है जहाँ मानव निर-अभिमानी, निर्भय हो करके संसार में विचरण करता है और परमपिता परमात्मा की महती में वह सदैव रत रहता है तो वह भी शुक्ल पक्ष कहलाता है यह तो देखो, पुत्रों! भगवान राम वशिष्ठ मुनि महाराज से यह वाक् श्रवण कर रहे थे। ऋषि ने शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष की विवेचना उपसंहार किया कि जो अंधकार को

त्याग करके प्रकाश में जाता है वह सोम कहलाता है, तो वह आत्मा का शुक्लपक्ष कहलाता है और जो ब्रह्म जगत में शुक्लपक्ष हैं, कृष्णपक्ष है उसका प्रारम्भ, उदय और अंत होता है। वह दोनों अपनी-अपनी आभा में, अपने स्वरूप में रत होते रहते हैं।

तो मेरे पुत्रों! देखो, तुम्हें मैं विशेष विवेचना देने नहीं आया हूँ। राम ने जब यह वाक् श्रवण किया तो बेटा! वह मौन हो गये। रात्रि समय यह चिन्तन चलता रहा, प्रातःकाल हो गया। प्रातःकाल होते ही अपने-अपने क्रियाओं से निवृत्त हो करके यज्ञशाला में विराजमान हो गये, याग का प्रारम्भ होने लगा। उद्गीत गाने लगे। माता अरुन्धती अपने में यागों का उपसंहार कर रही थी। उन्होंने कहा - हे ब्रह्मचारियों! यह जो याग हम रचना में ला रहे हैं यह याग मानव के जीवन का एक प्रतीक माना गया है, मानव के जीवन की एक धारा है, एक मौलिकता है, एक उज्ज्वलता है, एक प्रकाश है जिसको लाने के पश्चात मानव के जीवन में एक अनुपमता छा जाती है।

तो इस प्रकार जब माता अरून्धती ने कहा कि हे ब्रह्मचारियों! तुम अपने ओज और तेज को उत्पन्न करो। मुनिवरों! देखो, माता अरुन्धती के वाक्यों को पान करते हुए भगवान राम ने कहा हे मातेश्वरी! तुम्हें यह प्रतीत है मैंने मानो देखो, रावण से संग्राम किया है। मैं अपने विवेकमयी, तपस्या से, अपने मन को सजातीय, अन्तःकरण को पवित्र बनाने के लिए तुम्हारे इस याग में परिणत हुआ हूँ। हे मातेश्वरी! आप ने अभी-अभी कहा है कि तुम अपने जीवन को याग में परिणत कराते चले जाओ। अपने जीवन को याग में कैसे बना सकते हैं?

ब्रह्म का चिन्तन

उन्होंने कहा हे राम! तुम प्रातःकालीन रात्रि के अन्तिम पहर में ब्रह्म का चिन्तन करने वाले बनो। ब्रह्म का चिन्तन कैसे होगा? ब्रह्म का चिन्तन वह मानव करता है जो अपना मानवीय चिंतन महान् बनाता है। जैसे प्रातःकालीन मानव चिन्तन करना प्रारम्भ करता है, प्रभु से कहता है हे प्रभु! मैं तुम्हारी शरण में आना चाहता हूँ। हे प्रभु! मेरे अन्तःकरण को प्रकाशित कीजिए। मेरा अन्तःकरण अंधकार में परिणत हो गया हैं, मैं प्रकाश में जाना चाहता हूँ। तो एक-एक कण में ब्रह्म को दृष्टिपात करता है। एक-एक परमाणु में ब्रह्म के वह दर्शन कर रहा है, वह एक-एक अणु में प्रभु का दर्शन कर रहा है।

वह दर्शन कैसे कर रहा है? प्रातःकालीन उसके अन्तिम चरण पर जाता है जैसे एक मानव अपना एक प्रतिबिम्ब बनाता है और प्रतिबिंब बना करके उसके गर्भ में जाता है, उसके शब्दों की एक रचना करता है जब शब्दों की रचना करता है तो शब्द का उद्गार कहाँ से उत्पन्न हुआ है? यह वाणी से हुआ है, वाणी का समन्वय कहाँ रहता है? वाणी, रसना और तालु दोनों का समन्वय है। रसना, तालु का समन्वय कहाँ हैं? वायु से और अग्नि से रहता है वायु और अग्नि दोनों का समन्यव्य कहा है? प्राण से है प्राण का समन्व्य कहाँ मेरे प्यारे! देखो, चेतना से रहता है। चेतना का चेतना से जब समन्वय हो जाता है तो 'ब्रह्म वृत्तं देवाः' तो ब्रह्म का ज्ञान होने लगता है। उसमें ब्रह्म विद्यमान रहता है। उन्हीं वासना में ब्रह्म की प्रतिभा है प्रत्येक तरंग में ब्रह्म ही दृष्टिपात आता है। तो मेरे प्यारे! देखो, चिन्तन करने वाला जो ब्रह्म यागी बन रहा है जो ब्रह्म का चिन्तन कर रहा है अपने जीवन को याग में बना रहा है, बेटा! वह बहुत दूर अपनी उड़ान ले जाता है।

त्रि-वाद

आगे वह चिन्तन करता है कि हे ब्रह्मवाचो मैं यज्ञशाला के समीप विद्यमान हूँ इस यज्ञशाला में इसका जो निर्माण हुआ है वह देवताओं की पेरी के आधार पर हुआ है। इसका समन्वय देखो, तीन लोक हैं जैसे तीन लोक कहलाते हैं भूः भुवः स्वः और तीन ही गुण कहलाते हैं रजोगुण, सतोगुण, तमोगुण। तीन ही मात्राएँ हैं, अ, उ और

म् कहलाते हैं। त्रि-विद्या है इस प्रकार जिसे जान कर जब तीन प्रकार के व्रत कहलाते हैं ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य और इसी प्रकार तीन प्रकार की चन्द्रमा की कान्तियाँ होती है रोहिणी, वृत्तिका और ऊषा। इसी प्रकार तीन प्रकार की किरणें सूर्य की होती हैं रोहिणी, कान्ति और ऊषा, सर्वत्र यह एक बड़ा विशाल एक विज्ञान कहलाता है। इनकी धारा, सूर्य से इनका जन्म हुआ हैं। सूर्य प्रकाश कहाँ से लेता है? वह ऊर्जा द्यौ से लेता है। द्यौ में प्रकाश कहाँ से आता है? जो द्यौ के मध्य में रहता है। पिता और पुत्र के मध्य में भी तू है, माता और पिता के मध्य में भी तू है, गुरू, आचार्य और ब्रह्मचारी के मध्य में भी तू है। वहीं से सूर्य प्रकाश लेता है। उसी द्यौ से प्रकाश ले करके वह संसार को प्रकाशमान बनाता है। तीनों की धाराओं को जन्म देता है।

समन्वयता

तो विचार विनिमय क्या? माता अरून्धती बोली हे राम! अब तुम यह जान गये होगे कि हम उसमें और ऊँची उड़ानें उड़ें। हे राम! वह जो सूर्य है उसका समन्वय मेघों से हुआ, मेघों का समन्वय इन्द्र से हुआ, इन्द्र का समन्वय समुद्रों से होता है, समुद्र एक आभा है, एक आपो है, आपो का जो समन्वय है वह वायु से रहता है, अग्नि से रहता है और उन दोनों का समन्वय शून्य बिन्दु से रहता है और शून्य बिन्दु का समन्वय परब्रह्म परमात्मा से होता है।

तो मेरे प्यारे! मैं दूरी चला गया हूँ बहुत गम्भीर विचार देता-देता, किन्तु वहाँ वशिष्ठ आश्रम में राम और वशिष्ठ दोनों का संवाद प्रारम्भ होने लगा। मेरे प्यारे! देखो, जब माता अरून्धती ने ऐसे ब्रह्मज्ञान में राम को कृषक बना दिया तो राम मौन हो गये। राम मरे प्यारे माता अरून्धती के चरणों की वन्दना करने लगे। हे माता! मैं आपकी परीक्षा नहीं ले रहा हूँ मैं तो तेरा पुत्र हूँ। हे ममत्व को धारण करने वाली! माता ही तो लोरियों का पान कराती है और लोरियों का पान कराते ही तो ज्ञान देती है, कहीं ज्ञान रूपी लोरियाँ दे देती है कहीं मानो अमृतमयी लोरियाँ प्रदान कर देती है।

तपस्या में परिणायन

मेरे प्यारे! देखो, जब राम ने इस प्रकार अपने उद्गार प्रगट किये तो मुनिवरो! देखो माता अरून्धती मग्न होने लगीं। उन्होंने कहा राम! तुमने यह जान लिया होगा कि जब हम भगवान का, प्रभु का, ब्रह्म का चिंतन करना चाहते हैं तो हमारा प्रत्येक अंग ब्रह्मयाग में परिणत हो जाते है। प्रत्येक आभा में हम उस ब्रह्मयाग में परिणत हो जाने हैं। इसी प्रकार मेरे पुत्रो! देखो, तुम्हें विशेष विवेचना तो देने नहीं आया हूँ। तुम्हें यह वाक् उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि राम वशिष्ठ मुनि के आश्रम में तपस्या में परिणत हो गये। वह सांयकाल प्रभु के चिंतन में लग जाते, प्रातःकालीन चिंतन में लगः जाते, रात्रि को कई-कई दिवस हो जाते घनिष्ठ निद्रा लिए हुए, वह अपने में तपस्वी, विवेकरूप बन गये। वह अग्रहो ब्रह्मरूपः।

मुनिवरो! देखो, शेष चर्चाएँ राम की और वशिष्ठ की जो कर्मों के ऊपर विचार विनिमय हुआ वह चर्चाएँ मैं कल प्रगट करूँगा। आज का विचार हमारा अब क्या कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए, अपने जीवन को शुक्लपक्ष में ले जाना चाहिए। कृष्णपक्ष को हमें समापन कर देना चाहिए और देखो, हम अपने अंधकार को समाप्त करके प्रकाश में अपने जीवन को ले जाएँ, अपने समाज को ले जाए, माता अपने पुत्र को कृष्णपक्ष से शुक्लपक्ष के मार्ग पर ले जाएँ। यह है आज का वाक् अब मुझे समय मिलेगा मैं तुम्हें शेष चर्चाएँ कल प्रगट करूँगा।

आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय क्या? भगवान राम अयोध्या में जब आए लंका को विजय करके

तो नाना सभाओं के माध्यम से अपने विचार दे करके तपस्या के लिए उन्होंने गमन किया, आचार्य के चरणों में विद्यमान हो गये। माता अरून्धती के चरणों में विद्यमान हो करके दोनों की विचार धाराएँ ब्रह्मज्ञान में परिणत होने लगी। यह है बेटा! आज का वाक् समय मिलेगा मैं तुम्हें शेष चर्चाएँ आगे की कल प्रगट करूँगा। अब आज का विचार समाप्त अब वेदों का पठन-पाठन होगा।28.10.1985स्थान- सरधना

१० कर्मों की विचित्र धारा 1985 10 29

जीते रहो, देखो, मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद-मंत्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद-मंत्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव, परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि जितना भी ये जड़जगत अथवा चैतन्य जगत हमें दृष्टिपात आ रहा है उस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के मूल में, प्रायः वो मेरा देव दृष्टिपात आ रहा है।

परमात्मा की गाथा का गान

हमारा प्रत्येक वेद-मंत्र उस परमपिता परमात्मा की महिमा का वर्णन कर रहा है अथवा उसके गुणों का बखान कर रहा है। मानों उसकी प्रतिभा में ये वरुण ब्रह्मा जैसे माता का पुत्र, माता की गाथा गाता रहता है। जिस प्रकार ये पृथ्वी ब्रह्माण्ड की प्रायः गाथा गाती ही रहती है इसी प्रकार प्रत्येक वेद मंत्र उस परमपिता परमात्मा की गाथा गाता रहता है। बेटा! जब हम गान गाने लगते हैं तो प्रत्येक वेदमंत्र उस प्रभु की महती का वर्णन कर रहा है। जो संसार के अन्तिम मूल में, विद्यमान रहता है। जैसे यह संसार एक मन के सूत्र के समन्वय की प्रतिभा से प्रायः हमें दृष्टिपात आता रहता हैं। वास्तव में तो हम जब ज्ञान और वेद की दृष्टि में प्रवेश करते हैं तो यह संसार एक-दूसरे में ओत-प्रोत होता हुआ अथवा पिरोया हुआ-सा दृष्टिपात आता है। आज का हमारा वेदमंत्र उस परमपिता परमात्मा की महिमा अथवा उसके ज्ञान और विज्ञान की प्रतिभा का वर्णन कर रहा है, क्योंकि ये सर्वत्र ब्रह्माण्ड उसमें ओत-प्रोत है। ये सर्वत्र जो दृष्टिपात आने वाला जगत है, मानो ये उस परमपिता परमात्मा के गर्भाशय में निहित रहता है।

निर्माणवेत्ता

बेटा! देखो, जिस प्रकार माता के गर्भस्थल में हम जैसे शिशु पनपते रहते हैं। माता उसे अपने में धारण कर रही है, निर्माणवेत्ता निर्माण कर रहा है, देवताजन उसकी रक्षा कर रहे हैं। मेरे प्यारे उस प्रभु का कितना महान् ये विज्ञान है। वास्तव में तो सर्वत्र जहाँ भी तुम दृष्टि पहुँचाओगे वहीं परमपिता परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान हमें दृष्टिपात आता है।

ज्ञान और विज्ञान का क्षेत्र

परन्तु आज का हमारा वेदमंत्र विज्ञान के आंगन में प्रवेश नहीं कर रहा है। आज का हमारा जो वेद का मंत्र है वह हमें उसी क्षेत्र में ले जाना चाहता है। हमें बाध्य कर रही हैं, प्रेरणायें। मुनिवरों देखो, भगवान राम और वशिष्ठ दोनों की विवेचनाएँ और दोनों परस्पर विद्यमान हो करके एक-दूसरे में ओत-प्रोत होते हैं, बेटा! कैसी अपनी वार्त्ता प्रगट रहे हैं। जब मुनिवरो! देखो वह काल स्मरण आता रहता है, तो हमारा हृदय भी गद्गद् हो जाता है और हम यह कहा करते हैं कि यह संसार ज्ञान और विज्ञान का एक क्षेत्र है प्रत्येक मानव जब ज्ञान की प्रतिभा में रत होता है अथवा विज्ञान के वाघमय में प्रवेश कर जाता है तो मुनिवरो! देखो, उस ज्ञान और विज्ञान की प्रतिभा में मानव रत हो करके अपने को उसमें ओत-प्रोत करता हुआ मेरे प्यारे! विचित्र बन जाता है।

हमारे यहाँ परम्परागतों से ही, जिस भी काल में ऋषि-मुनियों ने अपनी स्थलियों पर विचार विनिमय करने का प्रयास किया, मानों ज्ञान और विवेक के क्षेत्र में पहुँचे हैं। आत्मविज्ञान में प्रवेश हुए हैं तो बेटा! देखो, दोनों प्रकार के ज्ञान और विज्ञान की उपलब्धियाँ होती रही हैं। वह दोनों प्रकार का जो विज्ञान है वह बेटा! देखो, मानव

की विचारधारा और मानव के अनुसंधान से उसका ज्ञान और मान होता है। जैसे एक मानव उड़ान उड़ने लगता है संसार की, मानव परमाणुवाद की उड़ान उड़ने लगता है, विज्ञान की उड़ाने उड़ने लगता है। एक-एक परमाणु, अणु में ब्रह्माण्ड को दृष्टिपात करता है, मेरे प्यारे रचनाकार उसके गर्भ में निहित रहता है।

तो जब भौतिक विज्ञान मानव के समीप आता है तो आध्यात्मिकवाद की उपलब्धियाँ हो गई हैं क्योंकि आध्यात्मिकवाद की उपर्लिब्ध्यिाँ तो उसी काल में प्रायः उत्पन्न हो जाती हैं जिस काल में मानव भौतिकवाद के ऊपर चिन्तन करना प्रारम्भ करता है। भौतिक विज्ञान की जो उपलब्धियाँ हैं, उनका समन्वय प्रेरणा से होता है और वह प्रेरणा लेकर के उड़ान उड़ता है तो उसकी प्रेरणा बा"य जगत में प्रवेश कर जाती है।

ब्रह्मयाग

तो मेरे प्यारे! मैं गम्भीर मुख में तो तुम्हें नहीं ले जाऊँगा। परन्तु विचार विनिमय हमारा क्या चल रहा है? हम सोम के ऊपर कुछ वार्त्ताएँ प्रगट कर रहे थे। चन्द्रमा के समन्वय की चर्चा कर रहे थे। मेरे प्यारे उसी सोम का समन्वय हमारे मानवीय जीवन से रहता है। तो मेरे प्यारे देखो, ''अप्रो ब्रह्मः वाचस्प्रहे'' भगवान राम प्रातःकालीन जब उनके यहाँ याग होने लगा, तो हमारे यहाँ ऋषि-मुनियों में क्या प्रत्येक माता-पिता भी ब्रह्मयाग में तन्मय हो जाते हैं, ब्रह्मयाग किसे कहते हैं? मैंने ब्रह्मयाग की चर्चाएँ कई कालों में तुम्हें प्रगट की हैं। हमारे यहाँ कई प्रकार के यागों का चयन परम्परागतों से रहा है और उन्हीं यागों में आध्यात्मिकवाद की पुट लगी रहती है। आध्यात्मिकवाद की महिमा अथवा उसकी प्रतिभा एक विज्ञान से समन्वय हो करके मृत्युंजयी से उसका प्रायः समन्वय होता है।

तो मेरे प्यारे! ''यागां ब्रह्म वाचाः'' भगवान राम, माता अरून्धती और महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज प्रातःकालीन याग करने लगे। जब प्रातःकालीन याग करने लगे, तो न्यौदा में मंत्रों का एक वेदमंत्र माता अरून्धती ने उदघृत किया और माता अरून्धती ने मंत्र उच्चारण करते हुए कहा कि वेद का मंत्र यह कहता है ''अभ्योभवाः सम्भवां लोकां हिरण्यं वृथा'' उस समय माता अरून्धती ने कहा कि वेदमंत्र यह कहता है कि जो मानव अपने विचारों को विज्ञान के वाघमय में प्रवेश करके जब उड़ान उड़ता है तो अरून्धती मंडल तक उसका समन्वय हो जाता है।

अरुन्धती मण्डल में प्राणी

तो मेरे प्यारे भगवान राम ने कहा कि अरून्धती कौन है माता? क्योंकि माता का नाम भी अरून्धती था, उन्होंने कहा कि हे प्रभो! हे राम! यह जो अरून्धती है यह एक मंडल कहलाता है। यह मंडल सूर्यमंडल से निचले भाग में रहता है। इसी के आसन पर वशिष्ठ मंडल रहता है, वह भी अपनी आभा में गति करता रहता है। तो मेरे प्यारे! भगवान राम ने पुनः कहा कि हे माता! यह अरून्धती मंडल क्या है? तो अरून्धती ने कहा कि यह जो मंडल है यह ''वरूणां वृव्रहा सुसम्भवं लोकां'' यह लोक है इसमें प्राणी अपना वास करते हैं, इसमें विज्ञान की भिन्न-भिन्न प्रकार की तरंगें निहित रहती हैं। विज्ञानवेत्ताओं ने इसके ऊपर अपना बहुत अन्वेषण और चिन्तन प्रारम्भ किया है।

अरुन्धती मण्डल का प्रभाव

माता अरून्धती से पुनः राम ने यह कहा कि माता यह अरून्धतीमंडल क्या हैं? उन्होंने कहा कि हे राम! यह अरून्धती मंडल यह मानव जीवन का साथी हैं जब माता के गर्भस्थल में शिशु विद्यमान होता है। तो छठे माह का जब गर्भाशय हो जाता है, सप्तम् प्रारम्भ होता है और सप्तम् का भी जब समापन होता है, तो अष्ठम् का प्रारम्भ

होता है तो अरून्धती मंडल की छाया आती है और अरून्धती मंडल की छाया आ करके, वहाँ जो बालक जो माता कुशल होती हैं उसको मेधावी प्रदान करती हैं। वही तरंगें तरंगित होती रहती हैं।

मेरे प्यारे! माता अरून्धती के इन शब्दों को पान करके राम ने कहा कि माता यह जीवन कैसे प्रदान करती रहती है? उन्होंने कहा कि अरून्धती की छाया सूर्य की किरणों से समन्वय करती है, उन किरणों से मिलान हो करके चन्द्रमा की कान्ति में प्रवेश कर जाती है और चन्द्रमा की कान्ति का समन्वय माता की रसना के निचले विभाग में पुरातत्व नाम की नाड़ी से होकर लोरियों से समन्वय हो करके उसकी छाया उसमें प्रवेश हो जाती है।

ब्रह्मज्ञान से समन्वय

मेरे प्यारे! देखो, जब यह विज्ञान की माता अरून्धती ने चर्चाएँ की, तो राम ने कहा कि हे माता! इसका ब्रह्मज्ञान से कोई समन्वय है? ब्रह्मज्ञान से क्या सम्बन्ध है इसका? उन्होंने कहा कि ब्रह्मज्ञानी तो वही बन सकता है जो सर्वत्र ब्रह्मांड को जान करके उसको समेट लेता है, जैसे एक मानव नाना प्रकार के लोक-लोकान्तरों में प्रवेश कर जाता है। लोक-लोकान्तरों को जान लेता हैं अथवा उनमें एक-दूसरी पहली बना करके उसमें ओत-प्रोत होता हुआ अन्तिम चरणों में आ जाता है और इस संसार को समेट करके ब्रह्मन्न ''ब्रह्माः कृतो अस्वतं ब्रह्म आत्मा''। जो आत्मा में उसका दिग्दर्शन करता रहता है। जो इस ब्रह्माण्ड को बाहृजगत में दृष्टिपात नहीं करता। वह अन्तरात्मा में दृष्टिपात करता है। आत्मा के प्रकाश में मन का जो व्यापार है अथवा चित्त का जो व्यापार है वह आत्मा के प्रकाश में ही तो बेटा! देखो, योगीजन अपने में ग्रहण करते रहते हैं। अपने में ग्रहण करके उसको साकार रूप दे करके जब उसकी संकल्पमयी शक्ति के द्वारा उसको अपने में दृष्टिपात करते रहते थे।

जब माता अरून्धती ने यह कहा तो राम ने कहा कि हे माता! यह मेरे विचार में अब तक नहीं आया, मैं इसको नहीं जान सकता हूँ कि ब्रह्म आत्मा से, आत्मविज्ञान से या आध्यात्मिकवाद से समन्वय अब तक मेरे विचार में नहीं आया। माता अरून्धती ने कहा तो और ज्ञान लो।

चित्त का मण्डल

उन्होंने कहा कि यह जो चित्त का मंडल है इसका अन्तिम जो मनका है वह मन कहलाता है जो प्रकृति का सूक्ष्मतम एक रहस्यतम माना गया है, जब इसमें देखो, ''ब्रह्मवृतां देवाः ब्रहे कृतं लोकाः'' जब साधक अपने में दृष्टिपात करता है, बाह्यजगत से लेता है। हृदय में प्रवेश करा देता है, मानों दिशाओं में प्रवेश करा लेता है, वह हृदयमयी सर्वत्र ब्रह्माण्ड को आत्मा के प्रकाश से चित्त का मंडल जो मन का व्यापार है, प्राणों की प्रतिक्रिया है, उन दोनों के समन्वय होते ही उसका दिग्दर्शन करता है। मेरे प्यारे! आत्मा का प्रकाश ही तो अन्तर्हृदय में ऐसा है जो स्वप्नवत् को प्राप्त कराता है, आत्मा के प्रकाश में मन, प्राण की प्रतिक्रियाओं को लेकर के संसार का दिग्दर्शन करता है।

मेरे प्यारे! देखो, यह वाक् अब राम के विचाराधीन बन गया। राम ने उसके ऊपर विचार विनिमय करते हुए वशिष्ठ मुनि से कहा, कहो भगवन् माता का वाक् यथार्थ है। वशिष्ठ मुनि बोले हे राम! तुम प्रश्न करो, तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर तुम्हें प्राप्त होगा। उन्होंने कहा प्रभु! मैं जानना चाहता हूँ कि मेरे चित्त के मण्डल में जो नाना प्रकार के रजोगुणी संस्कारों की उपलब्धियाँ हो गई हैं। मैंने एक साम्राज्यवेत्ता से संग्राम किया है और देखो, उनके ''क्रोधां अप्रतं अग्निनावृणास्ति तमोगुणी ब्रह्मेषु'' भगवन्! मैंने नाना प्रकार के आवेश में आ करके उनका वध किया है, वह किस कारण से किया है, यह भी मैं नहीं जान पाता। परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ प्रभु! मेरे चित्त के मण्डल में कौन से संस्कार विशेष हैं?

कर्म का बन्धन

उन्होंने कहा - राम! तुम इनको स्वतः ही दृष्टिपात करो। उन्होंने कहा प्रभु! मैं कैसे दृष्टिपात करूँ? तो मेरे प्यारे! उन्होंने कहा - हे राम! यह जो कर्म का बन्धन है यह बड़ा एक विचित्र बन्धन माना गया है जो यह कर्म की क्रियायें हैं अथवा क्रियाकलाप हैं, ये बड़े विचित्र हैं। उन्होंने कहा हे राम! एक समय जब मैं आचार्य कौतुक ऋषि के यहाँ अध्ययन करता था तो मेरे पूज्यपाद कौतुक ऋषि बोले कि हे ब्रह्मचारी! तू ब्रह्मवेत्ता तो बनेगा परन्तु आओ, आज साधना के सम्बन्ध में कुछ भ्रमण करके आते हैं तो हम एक समय भ्रमण करते हुए कजली वनों में पहुँचे। तो कजली वनों में कौतुक ऋषि और हम, दोनों जब पहुँचे तो कजली वनों में देखो, महर्षि बड़वेतु ऋषि महाराज अपने में तपस्या कर रहे थे और बड़वेतु ऋषि महाराज वायु गोत्रीय थे। तपस्या में तल्लीन थे और तपस्या क्या थी? कि वह मेघमंत्रां का अध्ययन करते, उनके ऊपर साधना करते और चित्त के मण्डल को जानने की इच्छा करते रहते।

अन्तःकरण

मानो देखो, एक समय मन कहीं प्राण के समीप है, कहीं प्राण मन के समीप है, कहीं चित्त के मण्डल में प्रवेश हो रहे हैं, कहीं अहंकार में प्रवेश कर गये, वह जो चतुष अन्तःकरण कहलाता है, अन्तःकरण से ही चित्त की प्रतिभा का जन्म होता है, वह चित्त के मण्डल में जब प्रवेश हो जाते हैं तो उन्होंने 12 वर्ष तक इस प्रकार का महान् तप करने के पश्चात मानो देखो, पीपल के वृक्ष, आतू के एक वृक्ष होता है, एक शाडिल्य वृचीका एक वृक्ष होता है, सोमव्रेतकेतु, सोमभानु एक वृक्ष होता है उसके पत्तों का रस बना करके उसको सोम बना करके पान करते रहते थे और उसको 12 वर्ष तक इस प्रकार पान किया तो वह जो चित्त के मण्डल थे ऋषि के वह चित्त के मण्डल मेरे पुत्रों! देखो, उनको साक्षात्कार दृष्टिपात आने लगे।

संस्कारों का साक्षात्कार

बेटा! मुझे कुछ ऐसा स्मरण है महर्षि वशिष्ठ बोले कि हे राम! मेरे पूज्यपाद कौतुक ऋषि ने कहा हे ऋषिवर! तुम यह क्या कर रहे हो? उन्होंने कहा कि मैं अपने चित्त के मण्डल का साक्षात्कार करना चाहता हूँ। उन्होंने कहा तुम चित्त के मण्डल को क्यों जानना चाहते हो? उन्होंने कहा इस चित्त के मण्डल में नाना जन्म जन्मान्तरों के संस्कार निहित हैं, वह विद्यमान हैं, मैं उनको साक्षात्कार करना चाहता हूँ, मैं चित्त के मण्डल में जो नाना प्रकार की प्रतिभा निहित हैं, जो मेरे जन्म-जन्मन्तारों के क्रियाकलाप हैं, मैं उन्हें दृष्टिपात करना चाहता हूँ और मैं प्रभु के द्वार पर मृत्युंजयी बन करके जाना चाहता हूँ, इससे मुझे मोक्ष की कोई पगडंडी प्राप्त हो जाए।

मोक्ष की पिपासा

मेरे प्यारे! देखो, उस समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कौतुक ऋषि से कहा कि तुम्हें मोक्ष की पिपासा क्यों जागरुक हुई? उन्होंने कहा प्रभु! मैं मोक्ष की पगडंडी को जानना चाहता हूँ? वास्तव में तो जब परमपिता परमात्मा हमारे निकटतम रहते हैं तो मुझे इतनी आवश्यकता नहीं है। परन्तु देखो, मोक्ष की पगडंडी में आनन्द को चाहता हूँ। आनन्द के एक रूप को जानने के लिए मैं सदैव उत्सुक रहता हूँ प्रभु। तो मेरे प्यारे! पूज्यपाद कौतुक ऋषि ने कहा - कि यह मोक्ष की जो अभिलाषा है इसको न कीजिए। आप अपने क्रियाकलाप में लगे रहिए। मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने जन्म-जन्मान्तरों के जो संस्कार मानव चित्त के मंडल में निहित रहते हैं उस चित्त के मंडल को जानना, बा“य जगत को जानना, बाह्यजगत को अन्तर्जगत् में ले गये। तो मेरे प्यारे, देखो, चित्त का मंडल दृष्टिपात होने लगा।

गौ घृत के द्वारा याग

मेरे प्यारे! देखो, मुझे कुछ ऐसा स्मरण है, उन्होंने एक वेदमंत्र का अध्ययन किया और वह वेद मंत्र न्यौदा का वेद मंत्र है। वह कहता था ''चित्तं ब्रह्मः वाचप्रहे बृणं ब्रही कृतां रेवाहं भविता{हं स्वस्ततं चित्तं वृथं ब्रह्म वाचो देवाः अस्वति लोकाः''। यह चित्त के मंडल को जानने के लिए ऋषिवर एक मंत्र का अध्ययन करते थे। वह वेदमंत्र यह कहता था कि चित्त का मंडल 'मंगलं बृहे' कि चित्त के मंडल में जो जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार निहित रहते हैं, इन्हीं को मैं बाह्यजगत में दृष्टिपात करना चाहता हूँ। कौतुक ऋषि और हमने उस आश्रम में अपना वास किया। छः मास तक उस ऋषि के आश्रम में रहे। वह वायु गोत्रीय ऋषि अध्ययन करने लगा, अध्ययन करते-करते चित्त के मंडल को जानते-जानते इतनी गम्भीर मुद्रा में चले गये। मेरे प्यारे! देखो, चित्त के मंडल से उन्हें भान हुआ भानंब्रहे कि हे ऋषिवर! तुम चित्त के मंडल की प्रतिभा को जानना चाहते हो तो तुम साकल्य लेकर के गौघृत के द्वारा याग का प्रारम्भ करो।

अन्तःकरण के चित्रों का दर्शन

तो ऋषि ने मेरे पूज्यपाद हम भी वहीं विद्यमान रहे तो याग प्रारम्भ होने लगा। जब याग प्रारम्भ हुआ तो ''यागां ब्रह्मवाचो देवाः'' याग की सुगन्ध, याग की तरंगें जब अन्तरिक्ष में प्रवेश होने लगी तो अन्तरिक्ष में वह जो जगत है चित्त का मंडल है शब्दों को लेकर अग्नि की तरंगें वायु में प्रवेश करके और वायु अन्तरिक्ष में प्रवेश करके वहाँ चित्त के मंडल में प्रवेश हो गये। तो मेरे पुत्रो! देखो, चित्त के मंडल में जो संस्कार थे। संस्कारों के साथ में जो क्रियाकलाप थे वे उन्हें साकार रूप में, स्थूल रूप में दृष्टिपात होने लगे। वह कैसे दृष्टिपात हुआ? चित्त के मंडल में उसका भान होने लगा। मेरे प्यारे! देखो, बाह्यजगत में उन्होंने वायु के पार्थिव के वासी वर्तकेतु परमाणुओं के एकत्रित किया और जल के सोमवृतिका परमाणुओं को एकत्रित किया, अग्नि के बराची सम्भेति मानो देखो, वैश्वानर प्राणियों को एकत्रित किया और एकत्रित करके उनकी पुट लगा करके उन ऋषि-मुनियों ने एक यंत्र का निर्माण किया था, उस यंत्र में पिप्रे ऋषि के चित्र आने लगे। मानों अपने अन्तःकरण को जो उन्होंने जाना है उसके चित्र आने लगे। ऐसा ऋषि ने वर्णन किया है।

ब्रह्मज्ञान की उपलब्धि

मुझे कुछ ऐसा स्मरण आ रहा है। देखो, भारद्वाजं ब्रह्मा भारद्वाज वाले याग को भी दृष्टिपात कराया। परन्तु उन्होंने इस प्रकार जब कौतुक ऋषि महाराज मेरे पूज्यपाद इत्यादियों ने इस प्रकार की आभा को लाने का प्रयास किया तो चित्त में जो संस्कार थे संस्कारों के साथ जो चित्तमंडल बना हुआ है वे चित्र दृष्टिपात आने लगे, क्रियाकलाप उनके समीप आने लगे। यह तो जान लिया। परन्तु देखो, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव से बोले - कि प्रभु! यह तो मैंने जान लिया कि आत्मा के बाह्य चित्त और आन्तरिक जो चित्त है दोनों का जब समन्वय होता है तो ब्रह्मज्ञान की उपलब्धि हो जाती है और वह व्यष्टि और समष्टि में प्रवेश कर जाता है। हे प्रभु! मैं यह जानना चाहता हूँ, प्रभु! मेरी उत्कट इच्छा एक जागरूक हुई है और वह यह कि चित्त के मंडल में तो मैंने यह संस्कार दृष्टिपात किए हैं, इन संस्करों का क्षय कैसे हो सकता हैं? मैं उनको शान्त करना चाहता हूँ।

निर्विकल्प समाधि

तो मेरे प्यारे! उन्होंने कहा कि इसमें निर्विकल्प समाधि में प्रवेश कर जाओ। निर्विकल्प समाधि में यह चित्त का मंडल सूक्ष्म होने लगेगा। तुम निर्भयी बन जाओगे, संसार में अनासक्ति को लाने का प्रयास करो। ऋषि ने वही किया। तो मुनिवरो! उन्होंने लगभग 12वर्ष का इस प्रकार अनूठा तप किया। तप करने का परिणाम यह हुआ कि

उससे आनन्द की उपलब्धि होने लगी, आत्मज्ञान हो गया। प्रकाशमयी जीवन चला गया।

कर्मों की गति से कीड़ा

तो मेरे प्यारे! देखो, महर्षि वशिष्ठ मुनि बोले हे राम! यह तुम्हारा जो जीवन है वह भी इसी प्रकार का बनेगा, तुम्हारे नाना प्रकार के संस्कार हैं, उनका क्षय हो सकता है और तुममें पालन करने की प्रवृत्तियाँ आ सकती हैं। जब तक इस प्रकार के संस्कार तुम्हारे अन्तःकरण में निहित रहेंगे, तब तक राम तुम अनूठा क्रियाकलाप नहीं कर सकोगे और क्रियाकलाप में तुम्हारी अन्तर्द्वन्दता बनी रहेगी।

तो मेरे पुत्रों! देखो, जब महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने यह वाक् प्रगट किया तो राम मुनिवरो! देखो, उनके चरणों में नतमस्तक हो गये और यह कहा - कि प्रभु! धन्य है। उन्होंने कहा - तो प्रभु! अब मुझे ब्रह्मज्ञान की साधना में प्रवेश करा दीजिए क्योंकि मैं कर्मों की विचारधारा में भ्रमण करते हुए ब्रह्मा व्रतम् ब्रह्मज्ञान की जब चर्चा कर रहे थे, तो राम बेटा! सायंकाल के समय भ्रमण करने गये। जब भ्रमण करने पहुँचे तब एक स्थली पर विवेक में विद्यमान हो गये तो मुनिवरो! वहाँ एक वृक्ष पर एक कीड़ा क्रीड़ा कर रहा था। वह क्रीड़ा करता हुआ जब देखो, दृष्टिपात किया तो उस कीड़े को लेकर के भगवान राम महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के समीप आए। वशिष्ठ मुनि से बोले - कि प्रभु! आपका संध्याकाल हो गया है परन्तु उससे पूर्व मैं एक प्रश्न करना चाहता हूँ। उन्होंने कहा - बोलो, राम! राम ने कहा - कि आप कर्मों की विचित्र धाराओं का वर्णन कर रहे थे, चित्त के मंडल में क्रिया कलापों का वर्णन करते रहते हैं। मैं यह जानना चाहता हूँ भगवन् यह कीड़ा है, यह क्रीड़ा कर रहा था। मैं इसको आपके समीप लाया हूँ, हे भगवन! जब कर्मों की विचारधारा आप प्रवेश कराते हैं तो वर्णन कीजिए इस कीड़ा ने कौन-सा कर्म किया है जो यह कीड़ा बन गया है?

तीन समय इन्द्र पद को प्राप्त कीड़ा

मेरे प्यारे! देखो, वशिष्ठ मुनि बोले हे राम! यह जो कीड़ा है यह कर्मों की गति से ही बना हैं, यह कर्मों की गति बड़ी विचित्र होती है। राम! तुम्हें तो यह प्रतीत होगा कि यह जो कीड़ा है मेरे विचार में तो ऐसा आता है मुझे योग की अनुभूतियाँ कुछ ऐसी आई हैं। ब्रह्मज्ञान के वाघमय में जब मैं प्रवेश हुआ। समष्टि क्षेत्र में, मैंने अपने विचारधारा को ले गया तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ है राम! कि जब से सृष्टि का प्रारम्भ हुआ है। सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ है, तब से अब तक वर्तमान के काल तक यह कीड़ा तीन समय इन्द्र की उपाधि को प्राप्त कर गया है और तीन समय इन्द्र की उपाधि को प्राप्त करने के पश्चात भी मानो देखो, इन्द्र बना। इन्द्र बन करके अभिमान आया। अभिमान आया तो उसमें देखो, महात्मा दधीचि के कंठ को दूरी कर दिया था, अपने अभिमान में इसी इन्द्र ने त्रिपुरी की उपाधि को प्राप्त करके इनसे कौतुक कौमभानु ऋषि महाराज के तप को नष्ट कराया। कभी इन्द्र न बन जाए उसी अभिमान में अगले जन्मों में जब शरीर को त्याग करके जन्म लिया तो यह साधारण प्राणी बना। साधारण प्राणी भी विचित्र न बनकर के उसके पश्चात यह दो सींगों वाला प्राणी बन गया। वहाँ भी तीक्ष्ण स्वभाव बना रहा। आगे चलकर के वह रेंगने वाला प्राणी बना, अब देखो, उसके पश्चात भी कीड़ा का कीड़ा ही बना हुआ है।

नम्रता से क्रियाकलाप

तो मेरे प्यारे! विचार विनिमय क्या? मानव को अपने जीवन में विचारना चाहिए। वशिष्ठ मुनि ने कहा कि मानव को अपने जीवन में नम्रता से क्रियाकलाप करना चाहिए और अपने में यह विचार ले कि जो सम्पदा है, जो मेरा इस समय संसार में है उसे मैं अपने प्रभु को अर्पित करके प्रभु को जो दृष्टिपात करता है, ऊर्ध्वा में

क्रियाकलाप करता रहता है, अपने में महानता में रत रहता है। वही तो विचित्र बनता है।

संधिकाल

तो मुनिवरो! देखो, राम मौन हो गये। जब राम मौन हो गये तो वह सांत्वना हो करके दोनों उस ब्रह्म याग में पुनः परिणत हो गये, क्योंकि संध्या का काल था, अपने में संध्या की प्रवृति में निहित हो गये। जैसे रात्रि और दिवस दोनों का जब समन्वय होता है। तो मुनिवरो! देखो, उसे संधि का काल कहते हैं। वह प्रभु के मिलन का काल होता है, जैसे प्रभु और भक्त दोनों का मिलान होता है, उसे भी संधिकाल कहते हैं। प्रातःकालीन जब रात्रि का क्षय होता है, दिवस का उदय होता है, उसको भी हमारे यहाँ संधि का काल कहते हैं। मेरे प्यारे! देखो, जब माता और पिता शास्त्रीय दृष्टि से यह विचारते हैं कि हमें पुत्र की उत्पत्ति करनी है। जब दोनों का मिलन होता है अपने संकल्प के द्वारा उसे भी संधि काल कहते हैं। जब भक्त और देखो, गुरु और शिष्य दोनों का मिलन होता है, आचार्य कहता है आओ, ब्रह्मचारी मैं तुम्हें ''ब्रह्मं वृतां देवाः'' तुम मुझे चक्षु मे शुन्धामि कर, वह शुन्धामि कर देता है। जब दोनों का मिलन होता है तो उसी को संध्या काल कहते हैं। संध्याकाल उसे कहते हैं जहाँ संधि होती है, जब माता अपने पुत्र को शिक्षा देना प्रारम्भ करती है, गर्भाशय से लेकर के लोरियों तक वह महान् बना देती है तो माता का वह संधिकाल कहलाता है।

सोम निर्माण

तो बेटा! मैं कहाँ चला गया हूँ वाक् उच्चारण करते-करते, मैं संधि के काल में तो जाना नहीं चाहता था। परन्तु विचार विनिमय यह चल रहा है, राम और वशिष्ठ मुनि महाराज दोनों संध्या में विद्यमान हो गये। संधि काल में अपने दिवस और अंधकार दोनों का मिलान करके उसका सोम रस बनाकर के पान किया जाता है और देखो, दिवस जहाँ क्षय होता हो रात्रि का प्रभाव होने वाला हो उसको सोम कैसे बनाया जाता है? बेटा! सोम कैसे बनाते है? मेरे प्यारे! देखो, रात्रि उन पुरूषों के लिए है जो आलस्य और प्रमाद में निहित रहते हैं जो अज्ञान में रहते हैं। और जो पुरूष इस ज्ञान में रहते हैं सदैव ज्ञान की चर्चा करते रहते हैं और परमात्मा का स्मरण करते रहते हैं तो प्रभु के राष्ट्र में रात्रि का क्षय हो जाता है। रात्रि नहीं रहती, प्रकाश आ जाता है, उसी प्रकाश में रत्त रहकर के गुरू शिष्य अपने जीवन को ऊँचा बनाते हैं।

तो मेरे पुत्रो! मैं विचार क्या देने चला गया हूँ। विचार यह प्रारम्भ हो रहा है कि राम देखो, वहाँ से संध्या समाप्त होते ही भ्रमण करने चले गये, अन्नपान करके भ्रमण करने चले गये। तो वहाँ एक प्राणी प्रकाश में, प्रकाश दे रहा था। वह उस प्राणी को लेकर के वशिष्ठ मुनि के समीप आए और वशिष्ठ मुनि से बोले - कि महाराज! हे पूज्यपाद! यह जो प्रकाश में प्रकाश दे रहा है यह प्राणी कौन है?

एक प्राणी के कर्म

उन्होंने कहा हे राम! यह वह प्राणी है जो मानव बन करके और प्रभु की भक्ति से और प्रकाश से वंचित हो जाते हैं जैसे हम विचारते रहते हैं कि परमपिता परमात्मा का अनुपम प्रकाश अपने में ग्रहण करते रहते हैं, सिचंन करते रहते हैं। परन्तु देखो, यह वह प्राणी है जिस प्राणी ने मानव जीवन को पाकर के परमात्मा के ज्ञान-विज्ञान से विमुख हो गया, विमुख हो करके यह नीचे जाता इसके पिछले विभाग में प्रभु ने प्रकाश दिया है, अग्र भाग को देखो, वंचित बना दिया है। जहाँ से प्रकाश लेना था, वहाँ से वंचित है। जहाँ प्रकाश नहीं जाना था वह प्रकाशं ब्रह्मः यह जो प्रकृति का प्रकाश प्राण के सन्निधान मात्र से हुआ, मन की प्रतिक्रिया से हुआ है, वहाँ देखो, वास्तविक प्रकाश जान करके अपने प्राणों का अन्त कर देते हैं और यह उसी प्रकाश के आंगन में जहाँ देखो, वर्तं ब्रह्माः उसी

प्रकाश में रत हो जाते हैं।

साम्यवाद

मेरे प्यारे! राम ने कहा - धन्य है प्रभु! मेरी शंकाओं का निवारण हो गया हैं। तो वह साधना में परिणत हो गये, साधना करते-करते रात्रि का काल हो, दिवस का काल हो, दिवस साधकों के लिए दिवस नहीं रहता, रात्रि-रात्रि नहीं रहती वह साम्य समय बन जाता है, साम्यवाद में परिणत हो जाते हैं। मानो साम्यता में रत रहने वाले, वह माता वसुंधरा बन करके रहती है वह सदैव इस शिशु को अपने में धारण कर रही है, ब्रह्माण्ड को धारण कर रही है। मेरे प्यारे! विचार क्या? वेद का मंत्र क्या कह रहा है? वेद का मंत्र कहता था प्रत्येक वेद का मंत्र प्रभु की गाथा गा रहा है। जिस प्रकार यह पृथ्वी ब्रह्माण्ड की गाथा गा रही है। हे माता! तू कैसी प्रिय वसुंधरा है? तू हमें अपने में धारण कर रही है, चाहे हम साधक के रूप में हों, चाहे विज्ञान के रूप में हों, चाहे हम परमाणुवाद के ऊपर अध्ययन करने वाले हो। हे माता! तू हमें प्रिय बनकर के धारण कर रही है। मेरे प्यारे! वह धारयामि भी बनी हुई है।

माता वसुन्धरा की गोद में

विचार क्या? मुनिवरो! देखो, प्रत्येक वेद मंत्र उस ब्रह्म की गाथा गा रहा है, ब्रह्म का वर्णन कर रहा है। माता के गर्भ में जब हम शिशु प्रवेश करते हैं। तो देवताजन रक्षा करते रहते हैं। तो इसीलिए वेद का ऋषि कहता है, आचार्य कहता है आज हम माता वसुंधरा की गोद में प्रवेश हो करके ऊर्ध्वा में क्रियाकलाप करते हुए अपने को यह स्वीकार करें कि हम प्रभु की गोद में आनन्द को अपने में अनुभव कर रहे हैं।

तो मेरे प्यारे! विचार विनिमय क्या? हम परमपिता परमात्मा की आराधना करने हुए देव की महिमा का गुणगान गाते हुए ब्रह्मज्ञान के गम्भीर क्षेत्रों में प्रवेश हो जाएँ, कर्म की विचारधाराओं को कर्ममप बना करके इस संसार सागर से पार हो जायें।

तो आओ, मेरे प्यारे! आज का विचार क्या कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए देव की महिमा का गुणगान गाते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएँ। यह है बेटा आज का वाक्। अब मुझे समय मिलेगा, मैं आगे की शेष चर्चाएँ कल प्रगट करूँगा। आज का विचार समाप्त। अब वेदों का पठन-पाठन।

आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि कर्मणां ब्रह्मः हमें कर्म के विचारों को अग्रणीय बना करके साधना में प्रवेश होना है। माता वसुंधरा की गोद में प्रवेश करके अपने अंग-संग माता को हम स्वीकर करेंगे। तो हम पापाचारों में परिणत नहीं होंगे। हम सदैव उसी की आभा में निहित रहेंगे। यह है बेटा आज का वाक्। अब समय मिलेगा मैं शेष चर्चाएँ कल प्रगट करूँगा।29.10.1985 स्थान :- सरधना

११ राष्ट्रवाद की पवित्रता 1985 10 30

जीते रहो, देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया। आज हमने पूर्व से, जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेद-वाणी का प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वेद-वाणी में, वे महामना यज्ञोमयी स्वरूप माने गये हैं। उस महान् देव की हम उपासना करते चले जा रहे थे मानो उसके गुणों का वर्णन गाना ही उसकी पूजा करी जाती है। प्रत्येक मानव के हृदय में, ये आशंका बनी रहती है कि हम पूजन किसका करें? कौन संसार में पूज्य है?

प्रभु की पूजा

तो हमारे यहाँ वेद-मंत्र यह कहता है। कि उस परमपिता परमात्मा के गुणों का गुणवादन करना मानो उसकी रचना कर अपने को उसमें करने का नाम प्रभु की पूजा कही जाती है। मानो बाह्य और आंतरिक दोनों जो जगत है उन दोनो में प्रभु की प्रतिभा को दृष्टिपात करना है। मानो एक-एक वस्तु गान के रूप में गाई जा रही है, मानो हम वेदों का उद्गीत गाते है अथवा गान गाते है तो वो गान भी मानो प्रभु की आभा में रत रहता है। प्रत्येक मानव परम्परातों से ही, नाना प्रकार का अन्वेषण करता रहा है। विचार विनिमय में करता रहा है, कि वे परमपिता परमात्मा यज्ञोमयी स्वरूप माने गए हैं। यज्ञ ही उसका आयतन मानो गया है। कोई भी मानव अपने में विचार विनिमय में करने लगता है कि आयतन किसे कहते हैं? मानो आयतन कहते है गृह को, जिसमें वो वास करता है। वासालय को ही आयनत कहा जाता है उसी में वह वास कर रहा है।

कर्तव्य

तो मानो देखो, आज हम उस परमपिता परमात्मा को, निहारते रहे और उसके ऊपर अन्वेषण, मनन और चिन्तन करना हमारा कर्तव्य कहलाता जाता हैं। मानो एक-एक परमाणु के ऊपर अन्वेषण, विचार विनिमय में करते रहते हैं। परन्तु यागों का चयन करने वालों में, बड़े विचित्र रूपों में बेटा यागों का आयोजन, यागों की रचना के ऊपर उन्होंने अन्वेषण किया है। मानो बहुत गम्भीररता में जब ले जाते हैं, तो उड़ान उड़ते रहते है। प्रायः वैसे तो वास्तविक वेदां ब्रह्माः वरुणाः सम्भवाः रूद्रो गतप्रवाह वरुणोस्ते।

क्रियाकलाप रूपी याग

वेद का वाक् यह कहता है कि संसार का, जितना भी क्रियाकलाप हो रहा है, चाहे वह इस पृथ्वी मण्डल पर हो रहा है, चाहे मंगल में हो रहा है, चाहे वह बुद्ध में हो रहा है, चाहे वह स्वाति में हो रहा है, किसी भी लोक-लोकान्तरों में जो भी क्रियाकलाप है वह एक मानो यागो के रूप में दृश्टिपात आता है। इसीलिए हमारा जीवन भी एक यज्ञोमयी स्वरूप माना गया है, यदि इससे पूर्व महान् क्रियात्मक क्रियाकलापों को करता रहता है और विचारता रहता है। माता, पालन करना, शासन करना, उत्पन्न करना मानो जब तक सीमा में बद्ध रहती है तो वह भी मानो एक याग में ही माना गया है।

तो आज का हमारा वेद-मंत्र मानो बड़े गम्भीर वाक्यों में ले जा रहा है जिससे मानो परम्परागतों से अपना अन्वेषण, अपना विचार विनिमय में करता रहा है। मानो देखो आज हम, उस परमपिता परमात्मा का जो ये ब्रह्माण्ड है अथवा ये जो अमूल्य जगत है जो एक-दूसरे में, ओत-प्रोत होता हुआ, माला के सहस्र समय दृश्टिपात आता है, मानो जब हम साधना में योगारूढ़ में रमन ब्रह्माः आरूढ़म् होते है। तो मेरे प्यारे! हम यही दृश्टिपात

करते है कि परमपिता परमात्मा का जो अनूठा जगत है, ये जो अनुपम है मानो एक प्रकार की प्रतिक्रियाएँ यागों के रूप में परिणत हो रही हैं।

मालाओं की चर्चा

मेरे प्यारे! मालाओं की चर्चाएँ मैंने कई काल में तुम्हें प्रगट की हैं, मालाएँ मानो देखो, एक प्रकार की अस्तित माला है, जैसे माता का पुत्र, माता की माला बना हुआ है। माला का अभिप्राय यह है कि इसमें हमें अपने को लगन, संलग्न कराना है। मानो जैसे ये माला बन जाती है। पुत्र-पुत्रियाँ माला है, उनकी माला पिता कहलाते है अथवा माता कहलाती है। आचार्य के कुल में आचार्य का शिष्य एक माला है और शिष्यों के आचार्य माला है। यह कैसी पवित्र माला एक-दूसरे में पिरोयी हुई हैं। विचार यह है जिसके ऊपर हम परम्परागतों से विचारते रहते है। परन्तु जब हम और ऊर्ध्वा में जाते हैं, गति करने लगते हैं, तो बेटा! ये जो पृथ्वी है, ये पृथ्वी आपो में पिरोयी हुई है। बेटा! ये पृथ्वियों की एक पृथ्वी नहीं, दो नहीं, अनन्य पृथ्वियों की बेटा! एक माला बनी है। किसी काल में बेटा! माला बनी थी पृथ्वियों की।

तीस लाख पृथ्वियों की माला

मुनिवरो! वेद के आचार्य, वैज्ञानिक तो ये कहते हैं कि तीस लाख पृथ्वियों की माला बनी। तीस लाख पृथ्वियों की माला बनकर के बेटा! इन मालाओं को कौन धारण कर रहा है? सूर्य कर रहा है। बेटा! सूर्य इस माला को धारण कर रहा है और एक सहस्र सूर्य। मुनिवरो! जब दृष्टिपात हुए तो उनकी एक माला बनी। उसको कौन धारण कर रहा है? बृहस्पति धारण कर रहा है। बृहस्पति उस माला को अपने में पिरो रहा है। परन्तु देखो, एक सहस्र बृहस्पतियों की माला बनी तो बेटा! देखो, उसको कौन धारण कर रहा है? बेटा! उसको देखो, आरुणि मण्डल अपने में धारण कर रहा है, वह उस माला को अपने में सूत्रित कर रहा है।

लोकों की ओत प्रोतिता

मेरे प्यारे! एक सहस्र आरुणि मण्डलों की माला बनी तो उसको ध्रुव ने धारण कर लिया। ध्रुव इतना विशाल है, मेरे प्यारे! एक सहस्र ध्रुवों की माला बनी, तो मूल नक्षत्र ने उसको धारण कर लिया। एक सहस्र मूल नक्षत्रों की माला बनी तो बेटा! उसको मानो स्वाति मण्डल ने अपने में धारण कर लिया। एक सहस्र स्वाति मण्डलों की माला बनी। तो बेटा! देखो, उसको अंचगलोक ने अपने में धारण कर लिया। एक सहस्र अंचग मण्डलों की माला बनी तो बेटा! देखो उसको रेणकेतु मण्डल ने अपने में धारण कर लिया एक सहस्र रेणकेतु मण्डलों को मानो मृचिका मण्डलों ने अपने में धारण कर लिया। एक सहस्र मृचिकाओं को कृतिमण्डल ने अपने में धारण कर लिया। एक सहस्र कृतिमण्डल को मेरे प्यारे! देखो, गन्धर्व लोकों ने धारण कर लिया। ये प्रभु का कैसा अमूल्य जगत बेटा! माला के रूप में दृष्टिपात आ रहा है। जब बेटा! इसके ऊपर अन्वेषण करते हैं, विचार करते हैं, तो ब्रह्माण्ड हमारे समीप आ जाता हैं, वेद के आचार्यों ने समाधिष्ट होकर के, साधना में परिणत हो करके मन और प्राण को एकाग्र करके आत्मा के प्रकाश में, इस सर्वत्र ब्रह्माण्ड को दृष्टिपात करने का उन्होंने बेटा! प्रयास किया।

समाधि में ब्रह्माण्ड की कल्पना

आगे मेरे प्यारे ऋषि कहते है, आख्यायिका कहती है कि इतने मण्डलों का एक सौर मण्डल बन जाता है। मेरे प्यारे! इस प्रकार के 85 लाख सौर मण्डलो को, धारण करने वाला। मानो देखो, एक आकाशगंगा कहलाती है। मेरे प्यारे! देखो, 90 करोड़ 85 लाख 49 हजार 92 आकाशगंगाओं को मानो एक अपने में पिरो रही है, अपने में धारण कर रही है। मेरे पुत्रो! देखो, ऋषि मुनियों ने ये समाधि के द्वारा इस ब्रह्माण्ड की कल्पना की। तो

तप का महत्व

मुनिवरो! देखो, एक सहस्त्र क्या? मानो देखो, 90 करोड़ 552 अवन्तिकाओं को बेटा! एक निहारिका अपने में धारण कर रही है।

तो विचार क्या? मेरे पुत्रो! कैसी ये माला है? ये कैसा अनुठा जगत है? जिसके ऊपर मानव चिन्तन करता-करता उसमें मौन हो जाता है और विचारता है। ''सम्भवः देवं ब्रह्माः द्वितीयां भविता लोकं ब्रह्मा'' मेरे प्यारे! देखो, ऋषि मुनि यहाँ आकर के मौन हो जाते हैं, विचारते रहते हैं, माला को अपने में धारण करते रहते। तो बेटा ये कैसी विचित्र माला, निहारिका, अवन्तिका, आकाशगंगाएँ, सौरमण्डल मानो देखो, एक दूसरे में ये कैसे पिरोए हुए है? कैसे सूत्रित हो रहे है? एक-दूसरे में माला को धारण कर रहे है, जैसे माता अपने पुत्र को धारण कर रही है, मानो अपनी माला बनाकर के उसका कृत्तियों में अपना रूप धारण करा देती है। तो मेरे प्यारे! देखो, जैसे राजा की प्रजा माला है और देखो, प्रजा की राजा माला है ये सूत्र में प्रतीत होता हुआ जगत दृश्टिपात आता है। तो आओ, मेरे प्यारे! मैं विशेष विवेचना तो आज देने नहीं आया हूँ। अब मेरे प्यारे! महानन्द जी दो शब्द उच्चारण करेंगे।

पूज्य महानन्द जीः-''ओउम् सर्वं भदंर मनुः वाचनं ब्रह्माः राचतं रथा। मेरे पूज्यपाद गुरूदेव! मेरे भद्र ऋषिमण्डल और भद्र समाज अभी-अभी मेरे पूज्यपाद गुरूदेव एक ऐसी चर्चा कर रहे थे जिन चर्चाओं में बहुत अनुसंधान की आवश्यकता रहती हैं क्योंकि आधुनिक काल का जो विज्ञान है, वह विज्ञान मानो तेरह लाख पृथ्वियों की गणना कर पाया है और मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तीस लाख पृथ्वियों की गणना करा रहे है। परन्तु एक-दूसरे में पिरोयी हुई ये माला, जिसे ऋषि जन समाधि के द्वारा मानो इसको अपने में धारण करते रहे है, ये क्रियात्मक जीवन, प्रायः ऋषि मुनियों का होता है, जो लघुमस्तिष्क में, समाधि के द्वारा प्रकृति के मण्डल को जानते है और परमपिता परमात्मा का जो अनूठा ये ब्रह्माण्ड है, जिस ब्रह्माण्ड की कल्पना करता-करता मानो अन्त में शान्त हो गया है। अतीत का जो विज्ञान है, वो बड़ा विचित्र रहा है।

वर्तमान काल का परिचय

आज मैं अतीत के विज्ञान में या प्रभु के वाक्यों पर अपनी टिप्पणी करूँ तो ये मुझे सुशोभनीय नहीं है, न मेरा इतना सामर्थ्य हैं कि आज मैं पूज्यपाद गुरुदेव के वाक्यों पर, क्योंकि इनका जो विचार है, इनकी जो धारणा है वो बड़ी विचित्रतम रही है, वो विज्ञान से ओत-प्रोत रहती है। मानो मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को बार-बार अपना कुछ परिचय कराता रहता हूँ, महाभारत काल के पश्चात जो भी इस संसार में जो भी इस पृथ्वी मण्डल पर क्रियाकलाप हुए हैं, कर्म हुआ है, उसके ऊपर में पूज्यपाद गुरुदेव को अपना वाक् प्रकट कराता रहता हूँ, आज जो ये हमारी आकाशवाणी है। ये मानो देखो, पृथ्वी मण्डल पर ये उस स्थली पर जा रही हैं जहाँ साम याग का मानो समापन हो रहा है, ये हमारा बड़ा सौभाग्य रहा है, मेरी जो मनोनीत धारणा रहती हैं, यजमान के साथ रहती है।

वर्तमान की दुर्दशा

मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को अभी-अभी कुछ काल हुआ ये वर्णन कराया कि आधुनिक काल का जो जगत है। मानो ये वाममार्ग के आधार पर अपने जीवन को व्यतीत कर रहा है। मानो देखो, प्राणियों का भक्षण करने वाला है, सुरा का पान करने वाला है। ये जो आहार है ये जो मानो क्रियाकलाप है, ये सब वाममार्ग की प्रथा कहलाती है। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को ये निर्णय कराता रहता हूँ। हे यजमान! तेरा जीवन मानो कितना महान है, कि तू इस काल में जहाँ वानमार्ग की देखो, ऊर्ध्वा में पुकार हो रही है, जिस भी राष्ट्र में जाते है तो

एसा प्रतीत होता है और जिस भी विज्ञानशाला में प्रवेश करते हैं, तो वह विज्ञानशाला भी वैज्ञानिकों के वार्घैमय में सिमटी सी दृश्टिपात होती है।

धर्म की अनेकता के दुष्परिणाम

परन्तु देखो, ये जो राष्ट्रवाद है। जब ये विचारता है तो नाना धर्मों की चर्चा करता है। राष्ट्रवाद जब नाना धर्मों की चर्चा करता है तो ये मानो देखो, राष्ट्र की धृष्टता है। ये राजा का तो शब्द नहीं होता। ये मानवता का भी शब्द नहीं होता। मानवता एक अपनी मानवीय वेदी पर सदैव नृत्य करती रही है। सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर और ये नाना धर्मो में इस समाज का विभक्त होना। ये राष्ट्र और समाज का देखो, दुर्भाग्य कहलाता है। ये समाज विभक्त नहीं होना चाहिए। ये नाना धर्मां में विभक्त होने वाला, समाज है, इसमें मैं मानवता का एक हृस स्वीकार करता हूँ। ऋषि-मुनियों की पद्धति में, ऋषि-मुनियों के विचारों में, वैदिक सम्पदा में, हमें प्रायः देखो, नाना धर्मों की विवेचना नहीं प्राप्त होती।

याग त्याग के दुष्परिणाम

मुझे स्मरण हैं मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मुझे बहुत-सा निर्णय कराते रहते हैं। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को भी आधुनिक काल का परिचय देता रहता हूँ। मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा - कि ये जो समाज इतना तिरस्कृत हो रहा है ये स्वार्थ में परिणत हो रहा है। आज जो संसार चिन्तित है उसके मूल में उन्होंने याग को अपने से पृथक् कर दिया। याग को जिस भी काल में पृथक् किया जाता है उसी काल में, समाज में अज्ञानता और नाना प्रकार की ईश्वर के नामों पर, नाना प्रकार की रूढ़ियाँ बन जाती है, उसे धर्म नहीं कहते, उसे अज्ञान कहते हैं। जो एक को नाना रूपों में विभक्त करते हैं वह मानो देखो, विचार वह समाज नहीं होता और न वह राष्ट्र ही विचारशील होता है।

कर्तव्यवाद के लिए राष्ट्र निर्माण

हमारे यहाँ एक पद्धति आती है कि राष्ट्र का निर्माण क्यों होता है? एक समय मानो देखो, वेदाध्ययन करने वालों एक समय एकत्रित होकर के उन्होंने एक प्रसंग लिया। वेद का कि राष्ट्र का निर्माण क्यों होता है? राष्ट्र की पद्धतियों का निर्वाचन क्यों होता है? गौ राष्ट्र को क्यों प्रदान की जाती है? तो उस समय ऋषि मुनियों ने वेद के मंत्रो का अध्ययन करते-करते ये कहा कि समाज को मानो कर्त्तव्यवाद में लाने के लिए, राष्ट्र का निर्माण होता है। यदि मानो देखो, राष्ट्र, समाज को कर्तव्यवाद की वेदी पर नहीं ला सकेगा, कर्त्तव्यवाद में नहीं ला सकेगा तो ये समाज देखो, वह त्रुटियों में परिणत हो जाता है, ये अज्ञान में परिणत हो जाता है, इसीलिए राजा के राष्ट्र में बुद्धिजीवी प्राणी होने चाहिए। बुद्धिमान, तपस्वी होने चाहिए। जिससे राष्ट्र को अपनी वार्ता प्रकट करा करके, कुछ धर्म की और राष्ट्र को उज्ज्वल वेदी पर निर्धारित करने वाले हो।

द्रव्य की सदुपयोगिता

इसीलिए मेरा जो विचार है वह यजमान के साथ रहता है जो यज्ञशाला में विद्यमान होकर के अपने विचारों का और द्रव्यों का सदुपयोग करता रहता है और वह स्वाहा कहकर के देवताओं को हवि प्रदान कर रहा है, वो गूँज कर रहा है, वो अग्नि को देवताओं का मुख बनाकर के मुखारबिन्दु में मानो अपने स्वाहा अपनी कामना प्रकट कर रहा है, अपनी कामना, मानो देखो, त्यागनिष्ठ होकर के वह अपने में परिणत हो रहा है। हे यजमान! मेरा अन्तर्हृदय तो मानो तेरे समीप रहता है। तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। तेरे जीवन की प्रतिभा मानो देखो, प्रतिभाशाली बनकर के मानवीयता में मानो निहित होकर के तू अपने द्रव्य का सदैव सदुपयोग करता रहे।

याग का अभिप्राय

इसी प्रकार मैं राष्ट्र को कहता हूँ। हे राजन्! तू अपने राष्ट्र में मानो देखो, सर्वत्र राष्ट्र में जितना द्रव्य है तू सबका याग कर्म कर। मानो देखो, याग का अभिप्राय अग्निहोत्र तो है ही, परन्तु यागों का अभिप्राय यह है कि तेरे राष्ट्र में, समाज को उद्बुद्ध कराने के लिए, समाज को कर्त्तव्यवाद का देखो, विचार देने के लिए तेरे राष्ट्र में देखो, बुद्धिमानों का सम्मेलन होना चाहिए और बुद्धिजीवी प्राणी मानो देखो, बुद्धिजीवी, प्राणी तेरे राष्ट्र की उज्ज्वलता का प्रसार करें। मानो देश की सेवा कर्त्तव्यवाद माना गया है और प्रजा तेरे साथ होकर के तेरे गुणों का गुणावधान करें। तू प्रजा के गुणों में गुणावधान करा और एकोकी मानो देखो, धनवन्तरी बन करके तू प्रजा को धर्म और कर्त्तव्य के मार्ग पर चलाने वाला बन।

महाभारत काल के बाद विकृतियाँ

मानो मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को पुरातनकाल में कहा था। कि महाभारत काल के पश्चात इस समाज की मानो देखो, विकृतियाँ प्रारम्भ हुई हैं। यहाँ इस पृथ्वीमण्डल पर नाना प्रकार के देखो, रूढ़िवादी प्राणी बने हैं। देखो, कुछ अज्ञानता के वश मानो कुछ राष्ट्रीयता अपनाने के वश देखो, रूढ़ियों का जन्म होता है। रूढ़ियों की उत्पति उस काल में होती है जब समाज में अज्ञान आ जाता है। समाज की जातियता के नाते पर मानो देखो, वृत्तियाँ समाप्त हो जाती है।

विजयदशमी पर्व का प्रारम्भ

अभी कुछ समय हुआ है, एक पर्व गया है हमारे यहाँ, जिसको विजयदशमी कहते हैं। विजयदशमी को समाज ने यह स्वीकार कर लिया कि रावण का इस दिवस मानो वध हुआ है। रावण का देखो, निधन हुआ था, ऐसा समाज स्वीकार कर गया है। परन्तु मेरा विचार, मैंने जो इस संसार को पूज्यपाद देव की अनुपम कृपा से इस समाज को दृश्टिपात करने का या संसार को दृष्टिपात किया तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ है कि ये पर्व की उपलब्धि है कहाँ से? मानो देखो, भद्र और, अस्त्रों-शस्त्रों का पूजन होता है। अस्त्रां-शस्त्रों का विजय दशमी के दिवस पूजन होता है। हमारे यहाँ यह प्रार्थना की जाती है कि हमारी दसों इंद्रियाँ मानो संयम में रहकर के अपने जीवन को विजय करने वाले बने। जब हमारा जीवन विजयी हो जाएगा तो हम संसार को विजयी कर सकते है।

राजा रघु से गुरु के लिए दक्षिणा

जैसे मानो विजयदशमी के दिवस ही मानो देखो, हमारे यहाँ राजा रघु के यहाँ व्रतेन्तु ब्रह्मचारी ने विजयदशमी के दिवस ही मानो देखो, उनका याग सम्पन्न हुआ था। महाराजा रघु ने जब याग सम्पन्न किया। इसी दिवस जब महाराजा व्रतेन्तु ने अपने पूज्यपाद को स्वतः ही मानो देखो, दक्षिणा स्वीकार करने के लिए देखो कहा कि मुझे दक्षिणा दो, मैं गुरू को दक्षिणा देना चाहता हूँ। तो यही वो दिवस था मानो देखो, उस समय राजा रघु ने रात्रि के काल में ये नियमावली बनाई। हे छात्रों! जाओ, हे क्षत्रियों! जाओ, हे बलिष्टं ब्रह्म! अस्त्रों-शस्त्रों से जाकर के कुबेर के धन को विजय करके लाओ। जिससे मैं एक ऋषि ब्रह्मचारी का पूजन कर सकूँ। यदि में इसका पूजन नहीं कर सका तो मेरा जो यज्ञ जो कुछ ही काल हुआ है, समाप्त हुआ है। ये मेरा मानो देखो, यज्ञ सम्पन्न नहीं होगा।

महाराजा कुबेर द्वारा स्वतः धन देना

तो उसी समय, रात्रि समय में देखो, योजना बनी और महाराजा कुबेर को ये प्रतीत हो गया था उनके गुप्तचर विभाग के द्वारा ''सम्भवां लोकां बह्मेः'' कि मानो देखो, रघु उन पर आक्रमण करेगा। रघु के देखो, वरिष्ठ

सेनापति तुम पर आक्रमण करेंगे। महाराजा का द्रव्य, वाहनों में, राजा रघु के यहाँ लाया गया। महाराजा रघु बड़े प्रसन्न हुए। महाराजा रघु ने जब वह द्रव्य मानो ब्रह्मचारी को प्रदान किया तो ब्रह्मचारी ने कहा - प्रभु! मैं उतना ही द्रव्य लूँगा, जितना मुझे गुरु को अर्पित करना है। मुझे मानो देखो, चौदह लाख मुद्राओं की आवश्यकता है। वही मुझे गुरु को प्रदान करनी है। मैं अधिक मुद्रा नहीं लूँगा।

धन न लेने के लिए विवाद

मानो देखो, राजा रघु का और ब्रह्मचारी दोनों का विवाद हो गया और विवाद में यह हुआ कि ब्रह्मचारी यह कहता है मैं इस द्रव्य को नहीं लूँगा और राजा रघु कहता है कि मैं इस द्रव्य को अपने कोष में अर्पित नहीं करूँगा। दोनों का विवाद हुआ। मानो देखो, राजा रघु और ब्रह्मचारी दोनों के विवाद को श्रवण करके महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज और मानो देखो, त्यागी, मुनि दोनों और महर्षि वैश्म्पायन ये तीनों ऋषि, महाराजा रघु के आश्रम में पहुँचे। उन्होंने कहा - राजन्! क्या विवाद हो रहा है?

उन्होंने कहा - ये ब्रह्मचारी! इस द्रव्य को स्वीकार नहीं कर रहा है। जो मानो कुबेर के यहाँ से आया। मेरे यहाँ तो द्रव्य नहीं था। मेरे यहाँ तो देखो, कांस्य तत्व के एक पात्र रहते थे केवल। मैं ये सब द्रव्य इसको प्रदान कर रहा हूँ, लेकिन ये ले नहीं पाता। ये कहता है कि मैं चौदह लाख मुद्रा ही लूँगा। ये करोड़ो की गणना में मुद्रा है। उन्होंने कहा - प्रभु! इसको न दीजिए। इसको उतना ही दीजिए क्योंकि इसकी यह प्रतिज्ञा है। यह ब्रह्मचारी है, प्रतिज्ञा है, उसकी प्रतिज्ञा को नष्ट न कीजिए। आप देखो, ये जो द्रव्य है, ये आपके राष्ट्र में जो धेनु गऊएँ है। मानो देखो, ये द्रव्य उनके लिए क्रिया में उनका आहार बनकर के रहेगा।

मेरे प्यारे! देखो, यह वाक् रघु ने स्वीकर कर लिया। जब रघु ने स्वीकार कर लिया तो व्रतेन्तु उस द्रव्य से, चौदह लाख मुद्रा लेकर के अपने आचार्य को प्रदान कर गए।

विजयदशमी पर्व का उद्देश्य

तो परिणाम क्या है। ये विचार देने के लिए, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कई समय से मानो देखो, उद्गीत, गान और वशिष्ठ का वर्णन करते चले आए हैं। मैं ये उच्चारण कर रहा हूँ कि ये जो विजयदशमी है ये परम्परागतों का एक क्रियाकलाप एक मानो देखो, उत्सव चला आ रहा है या क्षत्रियों का जो देखो, मानो अस्त्रों-शस्त्रों की पूजा होती है, आधुनिक काल कुछ काल ऐसा बना महाभारत के काल के पश्चात कि विजयदशमी के दिवस मानो देखो, ''ब्रह्मे वाच्प्रवाह ब्रह्मेः कृताम्''। देखो, वह न होकर के एक रावण का पर्व स्वीकार कर लिया कि रावण का इस दिवस निधन हुआ था। मानो देखो, इस दिवस रावण का निधन का प्रसंग भी हो सकता है। मैं यह नहीं कहता हूँ परन्तु देखो, यह पर्व अस्त्रों-शस्त्रों की पूजा का एक पर्व माना गया है। विजयदशमी के दिवस मानो देखो, साधक अपनी दसों इन्द्रियों से साधना करता है और ग्यारहवें मन को इसमें प्रतिभाषित कर देता है।

तो ऐसा मेरा विचार मानो परम्परागतों से होता रहा है। समाज में क्रियात्मक क्रियाकलाप होता रहा है। ये मध्यकालीन महाभारत के काल के पश्चात मानो देखो, साहित्य में विकृतता आने के कारण मानो देखो, रावण के वध का एक पर्व स्वीकार कर लिया। रावण का निधन किया गया। मैं तो ये कहता हूँ कि ये राष्ट्र का बड़ा दुर्भाग्य कहलाता है। एक मानो देखो, राजाओं की परम्परागतों से समाज के हित के लिए एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को परास्त भी कर देता है, एक राष्ट्र दूसरे को विजय कर लेता है। परन्तु देखो, जैसे राम जो राजा थे मानो उनके द्वारा जो अभिमान नहीं था उनके द्वारा उस पर्व के मानने का प्रसंग भी कदापि हमारे समीप नहीं आया हम इसको स्वीकार नहीं कर पाते हैं।

तप का महत्व

विचार यह आता है कि रावण का निधन हुआ, रावण के निधन में दोनो का संग्राम हुआ। दोनों में मानो देखो, साम्राज्य को लक्ष्य किया। राम ने अपनी संस्कृति का प्रसार किया। मानो वह संस्कृति लंका में विद्यमान हुई और वह "लकां ब्रह्माः व्रहे" देखो वही देखो एक पर्व बनकर के रही। देखो, हम सदैव इसका पूजन करते रहे है, पूजन कराते रहे हैं।

आज मैं इन विचारों पर न जाता हुआ केवल यह वाक् उच्चारण कराने जा रहा हूँ कि, महाभारत काल के पश्चात ये नाना प्रकार की जो रूढ़ियाँ बनी है, इन रूढ़ियों में एक मानो देखो, वैदिक पर्वों की रक्षा करने के लिए मानो देखो, इन पर्वों की रचना हो सकती है। इसमें रचनाकार बन सकते है। कुछ बुद्धिजीवी प्राणी मानो देखो, रचना करके अपनी मानवीयता की रक्षा या आर्यत्व या वैदिकता की उसमें देखो, एक वृत्तियाँ बना सकते है। ऐसा भी हमारा विचार बन सकता है या समाज का विचार भी बना है और मानो देखो, रक्षा हुई।

देखो, यहाँ मोहम्मद के मानने वालों ने विकृत्तियाँ प्रारम्भ की। उन्होंने न ये जाना है न जानकर के ही मानो देखो, यहाँ अपनी सम्प्रदा में दक्ष बन करके उनका राष्ट्र बना। उनके मानने वालों ने धर्म और मानवता का हृस करना प्रारम्भ किया जिससे राष्ट्र में, हृसता आती चली गई।

वायुमण्डल का प्रभाव

परन्तु देखो, आधुनिक काल का जो राष्ट्र है, वह तो उससे भी दूरी चला गया है। जो जान नहीं पा रहा है। परन्तु देखो, मैं कई काल में राष्ट्रीयता के निवारण करने के लिए ये विचार देता रहता हूँ। मेरा विचार प्रायः कोई से स्वीकार न करे, परन्तु मेरे विचार वायुमण्डल में तो भ्रमण अवश्य करेंगे। मेरे विचार मानो देखो, वायुमण्डल में और कोई समय आ सकता है उन विचारों पर विचार विनिमय हो सकता है और वह विचार क्या हैं? मैं यह कहता हूँ, हे राजन्! तेरे राष्ट्र में मानो देखो, याग होना चाहिए। महाभारत काल के पश्चात यागों का जो तिरस्कार हुआ है वाममार्ग के द्वारा। देखो, मानव अंगों की आहुति दी। आहुति से माँस का प्रारम्भ चला है, उसका परिणाम यह हुआ कि माँस का प्रारम्भ होते-होते यहाँ तक आ गया कि आज देखो, जहाँ राम की अयोध्या थी। भगवान मनु ने राष्ट्र का निर्माण किया था, अयोध्या का देखो, गठन किया और ब्रह्मेः मानो देखो, उसी राष्ट्र में जहाँ मानवता का प्रसार करते-करते राजा चले गए।

परन्तु देखो, आधुनिक काल का जो समाज है इस पृथ्वी मण्डल का है। मानव है वह देखो, लगभग कुछ ही प्राणियों को त्याग करके वह माँस का भक्षण करता है, वह सुरा पान कर रहा है। देखो, वह माँस और सुरापान में लगा हुआ है। इसके मूल में क्या है? इसके मूल में है, यागों का तिरस्कार। याग का तिरस्कार होते-होते कहाँ तक आ गया। प्रत्येक प्राणी मानो देखो, माँस का भक्षण करने लगा। वह करता हुआ सम्भोती ब्रह्मा वाचः" मैं ऐसा प्रतीत, अपने में दृश्टिपात करता रहता हूँ। प्रायः ये यागों का तिरस्कार नहीं होना चाहिए। माताओं के, श्रृंगार को भ्रष्ट किया जाने लगा जबकि यागों का तिरस्कार हुआ, मेरी पुत्रियों का तिरस्कार होने लगा, मानो देखो, जहाँ इनका पूजन होना चाहिए था। वहाँ तिरस्कार हुआ।

अशुद्ध पुत्रों की उत्पत्ति

मेरी प्यारी माता श्रृंगार में संग्रहित हो गई परिणाम यह हुआ कि विद्या का अध्ययन न करना। देखो, उन्हें विद्या का अध्ययन करना था संतान को ऊँचा बनाने के लिए। मानो देखो, अपने में संग्रहित हो गई। उसका परिणाम यह हुआ कि माताओं के गर्भ से अशुद्ध पुत्रों का जन्म हो करके उन्हीं के श्रृंगार को अपने में मानो ध्वस्त करने के लिए मानो देखो, समाज बन गया।

तप का महत्व

कर्त्तव्यवाद के लिए राजा

जब मैं यह दृष्टिपात करता हूँ, आधुनिक काल के समाज में मानो देखो, राष्ट्र ऊँचा न होने से, राष्ट्र का कर्तव्य है, राजा का जो निर्वाचन होता है वह समाज को कर्तव्यवाद में लाने के लिए होता। देखो, भगवान मनु से पूर्व राष्ट्र नहीं था। सृष्टि का क्रम, अपने-अपने कर्तव्यों का पालन कर रहा है। जब मानव अपने-अपने कर्तव्यों का पालन कर रहा है तो वहाँ राष्ट्रवाद की आवश्यकता नहीं। राष्ट्रवाद वहाँ बनता है जहाँ राष्ट्र अपने कर्तव्य से विहीन हो जाता है। समाज को कर्तव्यवाद में लाने के लिए एक राजा का निवार्चन होता है। वह वशिष्ठ कहलाता है और वह अपने को बनाता है सबसे पूर्व, जो तपस्वी बनता है तो समाज को तपस्वी बना देता है।

बुद्धिमानों का सम्मेलन

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो राष्ट्रवाद के सम्बन्ध में बहुत चर्चा करते हैं। आधुनिक काल के राष्ट्र का जो निवारण है वह इस प्रकार का हो सकता है। राजा का कर्तव्य है कि वह मानो जितने भी रूढ़िवाद है इस समाज में जितने भी रूढ़िवाद है इस पृथ्वी पर, उन सबका एक सम्मेलन होना चाहिए। मानो उनकी विचार धाराओं को स्वीकार करें। तर्क मानो देखो, दर्शनों के आधार पर उसकी मध्यस्थता राजा करें या बुद्धिमान करें। मानो देखो, जो वेदों का मर्मज्ञ हो। वेद की आभा में ले जाता हुआ समाज को विचार दे। जहाँ यज्ञ, विज्ञान और मानवीयता मानो जिसमें धारित होती हो, वही विचार मानो राजा के राष्ट्र में होना चाहिए। वे जब विचार होते है तो समाज में, एक-दूसरे के रक्त का पिपासी प्राणी नहीं बनेगा। रक्त का पिपासी उस काल में बनता है जब नाना प्रकार की रूढ़िया हो।

राष्ट्र की सून्मता

आधुनिक काल में तो प्रायः ऐसा ही है। देखो, वह मोहम्मद के मानने वाले कहते है कि यहाँ ये आर्य नहीं रहने चाहिए। मानो मोहम्मद के मानने वाले कहते है कि हम रहने चाहिए, ये क्यों है? क्योंकि राष्ट्र की सून्मता है। राष्ट्र की घृष्टता है। यदि राजा इस राष्ट्र का निवारण करना चाहता है। तो जो धर्म है पहले उसका निवारण करना चाहिए और जब तक धर्म का विभक्त बना रहेगा तब तक समाज में शांति की स्थापना नहीं हो सकती।

जब तक समाज मानो कितनी ही विद्या अध्ययन करें। मानो देखो, किसी आधार पर रहें। वह अपने में देखो, अपना ही बना रहता है। वैज्ञानिक यह जानता है कि मुझे विज्ञान के आधार पर अपने जीवन को, राष्ट्र को वैज्ञानिक बनाना है। परन्तु विज्ञान की धाराओं का जन्म होते हुए जब वह धर्म को आता है तो धर्म वही हैं जिसे माता-पिता से जिसने जन्म लिया।

राष्ट्रवाद में स्वार्थवाद

उसे भी मानो इतना त्रासित कर दिया गया है कि वह भी अपनी मानवता की चर्चा नहीं कर सकता। ऐसा आचार्य विद्यालय में अध्ययन रहा है। परन्तु सात्विकवाद को ले करके अध्ययन करा रहा है। वह जब एकान्त स्थली पर विद्यमान होता, तो वहीं होता है जहाँ उसके माता पिता की प्रतिभा रही होती है। यह क्यों हैं? ऐसा इसलिए है क्योंकि राष्ट्र ने राष्ट्रवाद का पालन नहीं किया। राष्ट्रवाद में अपने स्वार्थवाद का पालन कर रहा हैं और यह जो स्वार्थवाद है उससे एक समय वह आएगा जब स्वार्थवादी प्राणी मृत्यु का आहार बनकर के रह जाता है।

स्वार्थवाद में मृत्यु

आज मैं विशेष विवेचना न देता हुआ अपने पूज्यापाद गुरुदेव के लिए वर्णन करा रहा हूँ। हे प्रभु! यज्ञ के कर्मकाण्डों का हृस होने से, पद्धति हृसित होने से, मानो देखो, उसका तिरस्कार होने से, ये संसार दूषित बन गया। विज्ञान दूषित बन गया। राष्ट्र का विचार दूषित बन गया। समाज में मानो एक-दूसरे के प्रति रक्त के संचार

की प्रतिभा बन गई। इसका मूल क्या है? उसके मूल में मानो देखो, अज्ञान हैं, अज्ञान से और स्वार्थवाद में ही प्राणी मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

तो विचार-विनिमय क्या? मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह परिचय देने के लिए आया हूँ। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो ऐसी आत्म चर्चाएँ करते रहते है। जिस आत्म चर्चा की उड़ान मानो सतयुग के काल में गान रूपों में गायी जाती थी। त्रेता के काल में गायी जाती थी, जब राष्ट्र महान ऋषियों का मानो देखो, उनका पालन पोषण राष्ट्र करता था। बुद्धिजीवी प्राणी यागों के ऊपर अनुसंधान करते रहते थे।

राम की घोषणा आज का समाज करता है। पुरातनकाल में राष्ट्र को मानो एक खिलवाड़ स्वीकार करके राम और भरत ने अपने कर्त्तव्य का पालन किया। जब मैं विचारता हूँ, देखो, उनका विचार, उनका जीवन कितना मर्मज्ञ है, कितना महान्, कितना पवित्र है और कितना वह विद्या से गुथा हुआ माना गया है। यहाँ नाना प्रकार की सम्प्रदा महाभारत के काल में उपलब्ध हुई और उन सम्प्रदाओं में याग को भी तिरस्कार करते चले आ रहे है।

संसार रूपी यज्ञशाला

परन्तु याग का तिरस्कार नहीं हो सकता। क्योंकि यह एक सुगन्धि है यह अपने में सारस्वत है। ये मानो देखो, जब परमात्मा ने सृष्टि का प्रारम्भ किया था तो ये संसार रूपी यज्ञशाला का निर्माण उसी की कल्पना ऋषि मुनियों ने बाह्यजगत में लाकर के उसका अंतरिक्ष जगत से समन्वय किया है। इसीलिए ये मानो देखो, उसका हृस होते-होते कोई न कोई महापुरूष आते रहते है। इसको पुनः से देखो, ऊर्ध्वा बनाते रहते हैं। जागरूक, नवीनता देते रहते हैं। अतीत को मानो देखो, वह वर्तमान में लाते रहते हैं। ये मानो प्रायः देखो, ईश्वर की विभूतियाँ, ईश्वर की अनुपम देन कहलाती हैं।

पुरातन अनुसंधान

परन्तु आज मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव के लिए उच्चारण कर रहा हूँ, आधुनिक काल का विज्ञान मानो देखो, तीस लाख पृथ्वियों को नहीं जाना अब तक। अब तक केवल तेरह लाख पृथ्वियों तक पहुँचा है आधुनिक समाज। जब मैं पुरातन काल की चित्रावलियों में जाता हूँ, तो पुरातन काल के वैज्ञानिकों ने यज्ञ के ऊपर इतना अनुसंधान किया था कि यह जो यजमान होता और उद्गाता विद्यमान है। वह उनका चित्र बनकर के द्यौलोक को जाता था। उनकी चित्रावलियों के यंत्र को ऋषि मुनियों के मानो देखो, वैज्ञानिकों के कक्ष में विद्यमान थे। इनका चित्र आ रहा हैं, शब्द के साथ में चित्र है। शब्द ही विद्यमान है। वही मानो देखो, जाता हुआ द्यौलोक को प्राप्त होता है। इस प्रकार का विज्ञान, इस याग के ऊपर रहा है।

गौघृत का प्रभाव

आधुनिक काल मानो देखो, जिसके ऊपर वैज्ञानिकजन विचार कर रहे हैं कि आधुनिक काल का जो ये जगत दूषित हो रहा है। विज्ञान के वार्घैमय से दूषित हो रहा है, मुझे कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि आधुनिक काल का वैज्ञानिक कहता है कि गौघृत में यह क्षमता है कि वह अग्नि में प्रवेश करने से वायु को शुद्ध बना सकता है। वायुमण्डल के अशुद्ध परमाणुओं को देखो, निगल सकता है। ऐसा देखो, आधुनिक काल के वैज्ञानिकों का कुछ मत बन रहा है। मैं ये कहता हूँ कि मत ही नहीं है यह शाश्वत मानो यथार्थ है। इस क्रिया को मानव को करना चाहिए। राष्ट्र में, राजा के गृह में, याग होने चाहिए।

जैसे भगवान राम जिसकी आज हम पूजा करते हैं। देखो, राम ब्रह्म की आभा लगे रहते थे। परन्तु देखो, जब भगवान राम के जीवन को मैं दृष्टिपात, पूज्यपाद गुरुदेव के साथ मुझे ये सौभाग्य मिला परन्तु मैं अपनी

आभा में ये उच्चारण करता रहा हूँ। सम्भूति ब्रह्माः मानो उनके राष्ट्र में प्रत्येक गृह में याग हो रहे हैं। वहाँ द्रव्य की सूक्ष्मता तो नहीं है। परन्तु आधुनिक काल का राजा तो पूज्यपाद ऐसा है कि समाज के द्रव्य को लेकर अपने उदर की पूर्ति करना चाहता है। परन्तु वह याग में लग जाए तो उदर की पूर्ति कैसे होगी। उदर की पूर्ति तो तभी हो सकती है जब मानव शुभ देखो, राष्ट्रवाद की अर्थ तभी पूर्ण होगा जब कि वह देखो, शुभ कार्यों का करेगा।

जिस काल में वह शुभ कार्यों का करेगा तो राष्ट्रवाद देखो, उनका महान बन जाएगा। ऐसा कामना राष्ट्र करता रहता है। जब यह शुभ कर्म करने लगोगे, तो हम रामराज्य किसे कहेंगे? जब यह विचार राष्ट्रीयता में बन जाते हैं। तो विचार विनिमय में क्या, मेरे पूज्यपाद! इसके बाद मैं यह विचार, मैं राष्ट्रीय याग का निर्धारण करने के लिए मेरा एक ही मत रहा है.........।। शेष अनुपलब्ध।30.10.1985 स्थान सरधना, मेरठ